उच्चतर माध्यमिक पाठ्यक्रम

संस्कृत साहित्य-348

पुस्तक-3

विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

ए-24-25, संस्थागत क्षेत्र, सेक्टर–62,

नोएडा - 201 309 (उत्तर प्रदेश)

वेबसाइट : www.nios.ac.in, निर्मूल्य दूरभाष- 18001809393

उच्चतर माध्यमिक स्तर

संस्कृत साहित्य-348

सलाहकार समिति

प्रो. सरोज शर्मा
अध्यक्ष
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, (उत्तर प्रदेश)-201309

डॉ. राजीव कुमार सिंह
निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, (उत्तर प्रदेश)-201309

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

समिति अध्यक्ष
डॉ. के. इ. देवनाथन्
कुलपति,
श्रीवेङ्कटेश्वर वैदिक विश्वविद्यालय
चन्द्रगिरि परिमार्ग अलिपिरि
तिरुपति - 517502 (आन्ध्रप्रदेश)

समिति उपाध्यक्ष
डॉ. दिलीप पण्डा
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
हिरालाल मजुमदार मेमोरियल कालेज
दक्षिणेश्वर:, कलिकाता - 700 035 (पश्चिम बंगाल)

डॉ. रामनाथ झा
आचार्य (संस्कृताध्यनविशेषकेन्द्र)
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नवदेहली

डॉ. सन्तोष कुमार शुक्ल
आचार्य (संस्कृताध्यनविशेषकेन्द्र)
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नवदेहली

श्री सन्तु कुमार पान
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
विजयनारायण महाविद्यालय
पत्रालय-इटाचुना, मण्डल-हुगली-712147 (प. बंगाल)

आचार्य प्रद्युम्न
वैदिक गुरुकुल, पतञ्जलि योगपीठ, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

आचार्य फूलचन्द
वैदिक गुरुकुल
पतञ्जलि योगपीठ, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

स्वामी वेदतत्त्वानन्द
प्राचार्य, रामकृष्ण मठ विवेकानन्द वेद विद्यालय
बेलुर मठ, मण्डल-हावडा-711202 (प. बंगाल)

डॉ. राम नारायण मीणा
सहायक निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा - 201309 (उत्तरप्रदेश)

पाठ्यक्रम-समन्वयक

डॉ. राम नारायण मीणा
सहायक निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा - 201309 (उत्तर प्रदेश)

पाठ्यविषय निर्माण समिति

संपादक मण्डल

डॉ. वेंकटरमण भट्ट
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द विश्वविद्यालय,
बेलुर मठ, हावड़ा-711202 (प. बंगाल)

स्वामी वेदतत्त्वानन्द
प्राचार्य
रामकृष्ण मठ विवेकानंद वेद विद्यालय
बेलुर मठ, मण्डल-हावड़ा-711202 (प. बंगाल)

पाठ लेखक

(पाठ 1, 5, 6, 17-24)
श्री राहुल गाजि
अनुसन्धाता (संस्कृत विभाग)
जादवपुर विश्वविद्यालय
कलकत्ता - 700032 (प. बंगाल)

(पाठ: 8)
स्वामी वेदतत्त्वानन्द
प्राचार्य
रामकृष्ण मठ विवेकानन्द वेद विद्यालय
बेलुर मठ, मण्डल-हावड़ा-711202 (प. बंगाल)

(पाठ 2, 3, 4, 7, 9-15)
श्री विष्णुपदपाल
अनुसन्धाता (संस्कृताध्ययनविभाग)
रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द विश्वविद्यालय
मण्डल हावड़ा-711202 (प.बंगाल)

(पाठ: 16)
डॉ. दिलीप पण्डा
सहायक प्राध्यापक (संस्कृत विभाग)
हिरालाल मजुमदार मेमोरियल कॉलेज फॉर विमिन दक्षिणेश्वर
कलकत्ता-700035 (प. बंगाल)

अनुवादक मण्डल

डॉ. योगेश शर्मा
सहायक प्रोफेसर (संस्कृत)
संस्कृत, दर्शन और वैदिक अध्ययन विभाग
बनस्थली विद्यापीठ, टोंक-304022 (राजस्थान)

डॉ. मुकेश कुमार शर्मा
वरिष्ठ अध्यापक (संस्कृत)
राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, उस्नोता,
महेन्द्रगढ़, हरियाणा

डॉ. राम नारायण मीणा
सहायक निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, (उत्तर प्रदेश)-201309

श्री पुनीत त्रिपाठी
वरिष्ठ कार्यकारी अधिकारी
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
नोएडा, (उत्तर प्रदेश)-201309

रेखाचित्राङ्कन और मुख पृष्ठ चित्रण एवं डीटीपी

स्वामी हररूपानन्द
रामकृष्ण मिशन, बेलुर मठ
मण्डल-हावड़ा-711202 (प. बंगाल)

मैसर्स शिवम ग्राफिक्स
431, ऋषि नगर,
रानी बाग, दिल्ली - 110034

आप से दो बातें ...

अध्यक्षीय सन्देश

प्रिय शिक्षार्थी,

'भारतीय ज्ञान परम्परा' पाठ्यक्रम के अध्ययन के लिए आपका हार्दिक स्वागत है। भारत अति प्राचीन और विशाल देश है। भारत का वैदिक वाङ्मय भी उतना ही प्राचीन, प्रशंसनीय और श्रेष्ठ है। सृष्टिकर्ता भगवान ही भारतीयों के सम्पूर्ण विद्याओं के प्रेरक हैं, ऐसा सिद्धान्त शास्त्रों में प्राप्त होता है। भारत के प्रसिद्ध विद्वान, सामान्य जनमानस तथा अन्य ज्ञानी लोगों के बीच प्राचीन काल में आदान-प्रदान का माध्यम संस्कृत भाषा ही थी ऐसा सभी को ज्ञात है। इतने लम्बे काल में भारत के इतिहास में जो शास्त्र लिखे गए, जो चिन्तन उत्पन्न हुए, जो भाव प्रकट हुए वे सभी संस्कृत भाषा के साहित्यरूपी भण्डार में निबद्ध हैं। इस भण्डार का आकार कितना है, भाव कितने गंभीर हैं, मूल्य कितना अधिक है, इसका निर्धारण करने में कोई भी समर्थ नहीं है। प्राचीन काल में भारतीय क्या-क्या पढ़ते थे, वह निम्न श्लोक के माध्यम से प्रकट करते है -

अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः। पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश॥ (वायुपुराणम् 61.78)

इस श्लोक में चौदह प्रकार की विद्याएँ बताई गयी हैं। चार वेद (और चार उपवेद), छः वेदाङ्ग, मीमांसा (पूर्वोत्तरमीमांसा), न्याय (आन्वीक्षिकी), पुराण (अट्ठारह मुख्य पुराण और उपपुराण), धर्मशास्त्र (स्मृति) ये चौदह विद्या कहलाते हैं। इसके अलावा अनेक काव्य ग्रंथ और बहुत से शास्त्र हैं। इन सभी विद्याओं का प्रवाह ज्ञान प्रदान करने वाला, प्रगति करने वाला और वृद्धि करने वाला है जो प्राचीन समय से ही चल रहा है। समाज के कल्याण के लिए भारत में विद्या दान परम्परा के रूप में गुरुकुलों में आध्यात्मिक, मनोवैज्ञानिक, आयुर्वेद, राजनीति, दण्डनीति, काव्य, काव्य शास्त्र और अन्य बहुत से शास्त्रों का अध्ययन-अध्यापन होता रहा है।

विद्या के शिक्षण के लिए ब्रह्मचारी परिवार को छोड़कर गुरुकुल में ब्रह्मचर्याश्रम को धारण कर जीवन बिताते थे। और इन विद्याओं में पारंगत होते थे। इन विद्याओं में आज भी कुछ लोग पारंगत लोग हैं। प्राकृतिक परिवर्तनों, विदेशी आक्रमणों, स्वदेश में हो रही ऊठा-पटक इत्यादि अनेक कारणों से पहले जैसी अध्ययन-अध्यापन की परंपरा अब छूटती जा रही है। इन पाठ्यक्रमों की, परीक्षा प्रमाणपत्र इत्यादि आधुनिक शिक्षण पद्धति के द्वारा कुछ राज्यों/प्रदेशों में होता है, परन्तु बहुत से राज्यों/प्रदेशों में नहीं होता है। अतः इन प्राचीन शास्त्रों का अध्ययन, परीक्षण, और अधिक प्रमाणीकरण का होना आवश्यक है। इसे ध्यान में रखकर यह पाठ्यक्रम राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के द्वारा प्रारम्भ किया गया है। लोगों के कल्याण के लिए जितना ज्ञान आवश्यक है वैसा ज्ञान इन शास्त्रों में निहित है और मनुष्य के सामने प्रकट हो, ऐसा लक्ष्य है। जिसके द्वारा यहाँ पर सुखी हों, सभी निरोगी हों, सभी कल्याण दृष्टि से कल्याणकारी हों, किसी को कोई दुख प्राप्त नहीं हो, कोई किसी को दुःख नहीं दें, इस प्रकार अत्यन्त उदार उद्देश्य को ध्यान में रखकर 'भारतीय ज्ञान परम्परा' नामक इस पाठ्यक्रम की रचना की गई है। विज्ञान शरीरारोग्य का चिन्तन करता है। कला विषय मनोविज्ञान को तथा मनोविज्ञान आध्यात्मिक विज्ञान का पोषण करता है। विज्ञान साधनस्वरूप और सुखोपभोग साध्य है। अतः निःसन्देह रूप से कहा जा सकता है कि कला विषय शाखा विज्ञान से भी श्रेष्ठ है। कला को छोड़कर विज्ञान से सुख प्राप्त नहीं किया जा सकता है बल्कि विज्ञान को छोड़कर कला से सुख को प्राप्त कर सकते हैं।

यह संस्कृत साहित्य का पाठ्यक्रम छात्रानुकूल, ज्ञानवर्धक, लक्ष्य साधक और पुरुषार्थ साधक है, ऐसा मेरा मानना है। इस पाठ्यक्रम के निर्माण में जिन हिताभिलाषी, विद्वान, उपदेष्टा, पाठ लेखक, त्रुटि संशोधक और मुद्रणकर्ता ने परोक्ष या अपरोक्ष रूप से सहायता की है। उनके प्रति संस्थान की तरफ से मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं। रामकृष्ण मिशन-विवेकानन्द विश्वविद्यालय के कुलपति श्रीमान् स्वामी आत्मप्रियानन्द जी का विशेष रूप से धन्यवाद जिनकी अनुकूलता और प्रेरणा के बिना इस कार्य की परिसमाप्ति दुष्कर थी। इस पाठ्यक्रम के अध्येताओं का विद्या से कल्याण हो, जीवन में सफल हो, विद्वान बने, देशभक्त हो, और समाज सेवक हो, ऐसी हमारी हार्दिक इच्छा है।

अध्यक्ष

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

आप से दो बातें ...

निदेशकीय वाक्

प्रिय पाठक,

'भारतीय ज्ञान परम्परा' पाठ्यक्रम को पढ़ने की इच्छा से उत्साहित भारतीय ज्ञान परम्परा के अनुरागी और उपासकों का हार्दिक स्वागत करता हूँ। यह अत्यधिक हर्ष का विषय है की जो गुरुकुलों में पढ़ाये जाने वाला पाठ्यक्रम हमारे राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के पाठ्यक्रम में भी सम्मिलित किया गया है। आशा है की लम्बे समय से हमारी प्राचीन संस्कृति से जो दूरी थी वह अब समाप्त हो जाएगी। हिन्दु, जैन और बौद्ध धर्म के धार्मिक, आध्यात्मिक और काव्यादि वाङ्गमय प्रायः संस्कृत में लिखे हुये हैं। सैकड़ों, करोड़ों मनुष्यों के प्रिय विषयों की भूमिका के माध्यम से प्रस्तुत् प्रवेश योग्यता के द्वारा और मन को प्रसन्न करने के लिए माध्यमिक स्तर और उच्चतर माध्यमिक स्तर पर कुछ विषय सम्मिलित किये गए हैं। जैसे आंग्ल, हिन्दी आदि। भाषा ज्ञान के बिना उस भाषा के लिखे गए उच्चतर माध्यमिक स्तरीय ग्रन्थ पढ़ने में और समझ में सक्षम नहीं हो सकते हैं, वैसे ही यहाँ पर प्रारम्भिक संस्कृत तथा हिन्दी भाषा को नहीं जानते तो, इस पाठ्यक्रम को जानने में समर्थ नहीं हो सकते हैं। अतः प्रारम्भिक संस्कृत के जानकार छात्र यहाँ इस पाठ्यक्रम के अध्ययन के अधिकारी है ऐसा जानना आवश्यक है।

गुरुकुलों में अध्ययन करने वाले छात्र आठवीं कक्षा तक जितना संभव हो अपनी परंपरा से अध्ययन करें। नौंवीं दसवीं कक्षा और ग्याहरवीं तथा बारहवीं कक्षा तक भारतीय ज्ञान परम्परा के इस पाठ्यक्रम का निष्ठा से नियमित अध्ययन करें। इस पाठ्यक्रम से विद्यार्थी उच्च शिक्षा के लिए योग्य होंगे।

संस्कृत के विभिन्न शास्त्रों में किया गया कठिन परिश्रम विद्वान्, प्राध्यापक, शिक्षक और शिक्षाविद इस पाठ्यक्रम का प्रारूप रचना में, विषय निर्धारण के लिए, विषय परिमाण निर्धारण में, विषय प्रकट करने का, भाषा स्तर निर्णय में और विषय पाठ लिखने में संलग्न हैं। अतः इस पाठ्यक्रम का स्तर उन्नत होना है।

संस्कृत साहित्य की यह स्वाध्याय सामग्री आपके लिए पर्याप्त, सुबोध, रुचिकर, आनन्दरस को प्रदान करने वाली, सौभाग्य प्रदान करने वाली, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि पुरूषार्थो के लिए उपयोगी रहेगी, ऐसी हम आशा करते हैं। इस पाठ्यक्रम का प्रधान लक्ष्य है की भारतीय ज्ञान परम्परा का शैक्षणिक क्षेत्रों में विशिष्ट और योग्य स्थान स्वीकृत होना चाहिए। यह लक्ष्य इस पाठ्यक्रम के माध्यम से पूर्ण होगा, ऐसा हमारा दृढ विश्वास है। पाठक अध्ययनकाल में यदि मानते है की इस अध्ययन सामग्री में, पाठ के सार में, जहाँ संशोधन, परिवर्तन और परिवर्धन संस्कार चाहते हैं, उन सभी के प्रस्ताव का हम स्वागत करते हैं। इस पाठ्यक्रम को फिर भी और अधिक प्रभावी, उपयोगी और सरल बनाने में आपके साथ हम हमेशा तत्पर हैं।

सभी अध्येताओं के अध्ययन में सफलता और जीवन में सफलता के लिए और कृतकृत्य के लिए हमारे आशीर्वचन हैं–

किं बाहुना विस्तरेण।

अस्माकं गौरववाणीं जगति विरलाम् सर्वविद्याया लक्ष्यभूताम् एव उद्धरामिद्य

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत्॥

दुर्जनः सज्जनो भूयात् सज्जनः शान्तिमाप्नुयात्।

शान्तो मुच्येत बन्धेभ्यो मुक्तश्चान्यान् विमोचयेत्॥

स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया।

मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी॥

निदेशक (शैक्षिक)

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

आप से दो बातें ...

समन्वयक वचन

प्रिय जिज्ञासु,

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

परम्परा को आधार मानकर यह प्रार्थना है कि हमारा अध्ययन विघ्नों से रहित हो। अज्ञान का नाश करने वाला तेजस्वी हो। द्वेष भावना का नाश करने वाला हो। विद्या लाभ के द्वारा सभी कष्टों का निवारण करने वाला हो।

'भारतीय ज्ञान परम्परा' इस पाठ्यक्रम के अङ्गभूत यह पाठ्यक्रम उच्चतर माध्यमिक कक्षा के लिए निर्धारित किया गया है। इस पाठयक्रम की अध्ययन सामग्री आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए मैं परम हर्ष का अनुभव कर रहा हूँ। सरल संस्कृत तथा हिन्दी भाषा को जो जानता है, वह इसके अध्ययन में समर्थ है।

विद्वानों का अभिप्राय और अनुभवों के आधार पर काव्यशास्त्र का फल रस ही है। आनंद रस स्वरूप ही है। सभी प्राणियों का सभी कार्य आनंद और सुखपूर्वक संपन्न हों, यही प्रबल इच्छा है। काव्य के सभी विषय रस में ही स्थित हैं। काव्यों के अनेक प्रकार हैं और काव्य प्रपंच सबसे महान हैं। काव्य बहुत हैं। उनमें से विविध काव्याशों का चयन करके इस पाठ्य सामग्री में सम्मिलित किया गया है। इसी प्रकार साहित्य का सामान्य स्वरूप, काव्य का स्वरूप, भेद आदि प्रारंभिक ज्ञान यहाँ दिया गया है। पारंपरिक गुरुकुलों में जिस शिक्षण पद्धति से पाठ दिए जाते थे, उसी पद्धति का अनुसरण कर यह पाठ्यक्रम प्रतिपादित किया गया है।

उच्चतर माध्यमिक कक्षा हेतू निर्धारित साहित्य विषय का यह पाठ्यक्रम अत्यंत उपकारक है। शिक्षार्थी इसके अध्ययन से ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ होंगे। इसके अध्ययन से छात्र अन्य काव्यों में प्रवेश के योग्य होंगे। ये पाठ्य सामग्री काव्य और काव्यशास्त्र का श्रद्धा सहित अध्ययन में प्रवेश के लिए और मन को शांति देने वाली है। इस पाठ्य सामग्री के आकार पर नहीं जाना चाहिए और न इससे भय होना चाहिए। परंतु गंभीर रूप से अध्ययन करना चाहिए।

सम्पूर्ण पाठ्य पुस्तक तीन भागों में विभक्त है। पाठक पाठों को अच्छी प्रकार से पढ़कर पाठ में आये प्रश्नों के उत्तरों पर स्वयं विचार कर अन्त में दिए हुए प्रश्नों के उत्तरों को देखें, और उन उत्तरों को अपने उत्तरों से मिलाएँ। प्रत्येक पत्र में दिए हुए रिक्त स्थान पर टिप्पणीं करनी चाहिए। पाठ के अन्त में दिए प्रश्नों के उत्तरों का निर्माण करके परीक्षा के लिए तैयार हो जाएँ।

शिक्षार्थी अध्ययन काल में किसी भी कठिनता का अनुभव करते हैं, तो अध्ययन केन्द्र में किसी भी समय जाकर समस्या के समाधान के लिए आचार्य के समीप जाएँ या राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के साथ ई-पत्रद्वारा सम्पर्क करें। वेबसाइट पर भी संपर्क व्यवस्था है। वेबसाइट www.nios.ac.in इस प्रकार से है।

ये पाठ्यविषय आपके ज्ञान को बढाएं, परीक्षा में सफलता को प्राप्त करवाए, आपकी विषय में रुचि बढ़ाए, आपका मनोरथ पूर्ण करे, ऐसी कामना करता हूँ।

अज्ञानान्धकारस्य नाशाय ज्ञानज्योतिषः दर्शनाय च इयं मे हार्दिकी प्रार्थना
ॐ असतो मा सद् गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मामृतं गमय॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

भवत्कल्याणकामी,
पाठयक्रम समन्वयक
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

अपने पाठ कैसे पढ़ें!

संस्कृत साहित्य, उच्चतर माध्यमिक की इस पाठ्य सामग्री को विशेष रूप से आपकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए निर्मित किया गया है। आप स्वतंत्र रूप से स्वयं पढ़ सकें इसलिए इसे एक प्रारूप में ढाला गया है। निम्नलिखित संकत आपको सामग्री का सर्वोत्तम उपयोग करने का तरीका बताएंगे। दिए गए पाठों को कैसे पढ़ना है आइए, जानें–

पाठ का शीर्षक : इसे पढ़ते ही आप अनुमान लगा सकते हैं कि पाठ में क्या दिया जा रहा है। इसे पढ़िए।

भूमिका : यह भाग आपको पूर्व जानकारी से जोड़ेगा और दिए गए पाठ की सामग्री से परिचित कराएगा। इसे ध्यानपूर्वक पढ़िए।

उद्देश्य : प्रस्तुत पाठ को पढ़ने के बाद आप इस पाठ से उद्देश्यों को प्राप्त करने में समर्थ हो जाएंगे। इन्हें याद कर लीजिए।

पाठगत प्रश्न : इसके एक शब्द अथवा एक वाक्य में पूछे गए प्रश्न हैं तथा कुछ वस्तुनिष्ठ प्रश्न हैं। ये प्रश्न पढ़ी हुई इकाई पर आधारित हैं इनका उत्तर आपको देते रहना है। इसी से आपकी प्रगति की जाँच होगी। ये सवाल हल करते समय आप हाथ में पेंसिल रखिए और जल्दी-जल्दी सवालों के समाधान ढूँढ़ते रहिए और अपने उत्तरों की जाँच पाठ के अंत में दी गई उत्तरमाला से मिलाइए। उत्तर ठीक न होने पर इकाई को पुनः पढ़िए।

आपने क्या सीखा : यह पूरे पाठ का संक्षिप्त रूप है–कहीं यह बिंदुओं के रूप में है, कहीं आरेख के रूप में तो कहीं प्रवाह चार्ट के रूप में। इन मुख्य बिंदुओं का स्मरण कीजिए। यदि आप कुछ अपने मतलब की मिलती-जुलती नई बातें जोड़ना चाहते हैं तो उन्हें भी वहीं बढ़ा सकते हैं।

पाठांत प्रश्न : पाठ के अंत में दिए गए लघु उत्तरीय तथा दीर्घ उत्तरीय प्रश्न हैं। इन्हें आप अलग पृष्ठों पर लिख कर अभ्यास कीजिए। यदि चाहें तो अध्ययन केंद्र पर अपने शिक्षक या किसी उचित व्यक्ति को दिखा भी कते हैं और उन पर नए विचार ले सकते हैं।

उत्तरमाला : आपको पहले ही बताया जा चुका है इसमें पाठगत प्रश्नों और क्रियाकलापों के उत्तर दिए जाते हैं। अपने उत्तरों की जाँच इस सूची से कीजिए।

पुस्तक-1

कवि परिचय

1. कवि परिचय-1
2. कवि परिचय-2
3. कवि परिचय-3

काव्य अध्ययन-1

रघुवंश (प्रथम सर्ग 1-48 श्लोक)

4. रघुवंश - रघुवंशीय राजाओं का गुणवर्णन
5. रघुवंश - राजा दिलीप का गुणवर्णन-1
6. रघुवंश - राजा दिलीप का गुणवर्णन-2
7. रघुवंश - वशिष्ठाश्रम गमन

स्तोत्र साहित्य

8. मोहमुद्गर और राम गुणकीर्तन

गद्यकाव्य

9. शिवराजविजय - बटुसंवाद
10. शिवराजविजय - योगीराज संवाद
11. शिवराजविजय - यवन दुराचार

पुस्तक-2

उत्तररामचरित (प्रथम अंङ्क)

12. उत्तररामचरित - प्रस्तावना
13. उत्तररामचरित - अष्टावक्र संवाद
14. उत्तररामचरित - चित्रदर्शन-1
15. उत्तररामचरित - चित्रदर्शन-2

शुकनासोपदेश

16. शुकनासोपदेश - यौवन स्वभाव
17. शुकनासोपदेश - लक्ष्मी का चापल्य
18. शुकनासोपदेश - लक्ष्मी का दुष्प्रभाव-1
19. शुकनासोपदेश - लक्ष्मी का दुष्प्रभाव-2

पुस्तक-3

काव्यदर्पण

20. अलंकारिक परिचय-1
21. अलंकारिक परिचय-2
22. वृत्ति
23. छन्दों की मात्रा, गण, यति, भेद
24. छन्द
25. अलंकार-1
26. अलंकार-2
27. रस

संस्कृत साहित्य

उच्चतर माध्यमिक पाठ्यक्रम

पुस्तक-3

क्र.सं.	विषय-सूची	पृष्ठ संख्या
	काव्यदर्पण	
20.	अलंकारिक परिचय-1	1
21.	अलंकारिक परिचय-2	18
22.	वृत्ति परिचय	34
23.	छन्दों की मात्रा, गण, यति, भेद	60
24.	छन्द	76
25.	अलंकार-1	92
26.	अलंकार-2	108
27.	रस परिचय	122
	(i) पाठ्यक्रम	(i–v)
	(ii) अंक मूल्यांकन विधि एवं परीक्षा योजना	(v–viii)
	(ii) प्रश्न पत्र का प्रारूप	(ix–x)
	(iii) नमूना प्रश्नपत्र	(xi–xiv)
	(iv) अंक योजना	(xv–xvi)

20

आलंकारिक परिचय-1

आधुनिक समय में उपलब्ध प्रथम अलंकार शास्त्र का ग्रन्थ भामह प्रणीत काव्यालंकार है। अतएव इस शास्त्र का अलंकारशास्त्र नाम प्रसिद्ध हुआ काव्यशास्त्र का वास्तविक नाम अलंकारशास्त्र है और वह अलंकारशास्त्र काव्य का दर्शनशास्त्र है। अलंकार पद में अलम् और कार ये दो पद हैं। ''अक्षरं परमं ब्रह्म सनातनमलं विभुम्''... वदन्ति इस अग्निपुराण के वचन के अनुसार अलम् का अर्थ परब्रह्म है। अतएव अलंकारशास्त्र का अर्थ 'ब्रह्मविद्याशास्त्र' होता है। कटककुण्डलादि जैसे शरीर की शोभा बढ़ाते हैं वैसे ही अलंकार भी शब्दार्थमय काव्यशरीर की शोभा बढ़ाता है। साधारण अलंकार शोभा बढ़ाने का उपकरण विशेष है अर्थात् अलंकार सौन्दर्य पद का वाचक होता है, यह वामन का मत है। जैसे शरीर से लावण्य पृथक् नहीं होता उसी प्रकार शब्दार्थमय काव्य शरीर से भी सौन्दर्य पृथक् नहीं होता। काव्य के स्वरुप और उपादान के विषय में आलंकारिकों में मत वैसाम्य है। काव्य के प्राण के रुप में अलंकार रीति, रस ध्वनि, वक्रोक्ति इत्यादि को भिन्न-भिन्न स्वीकार करते हैं। प्राचीन आलंकारिकों ने अपने ग्रन्थों में अपने परिचय के विषय में कुछ भी नहीं लिखा। इस कारण से आलंकारिकों के देश, काल एवं कृति के विषय में पण्डितों की बहुत अधिक मत भिन्नता दिखाई देती है। विविध ग्रन्थों में स्थित उद्धृत वाक्यों को देखकर प्राचीन आलंकारिकों के देश, काल एवं कृतियों के परिचय का अनुभव किया जाता है। इस पाठ में आलंकारिकों के देश काल एवं कृति के विषय में पढ़ेगे।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के बाद आप समक्ष सकेंगे;

- आलंकारिकों के विषय में ज्ञान प्राप्त कर पाने में;
- आलंकारिकों के देश काल और कृतियों के विषय में ज्ञान प्राप्त कर पाने में;
- आलंकारिकों के वंश विषयक ज्ञान प्राप्त कर पाने में और;
- अलंकार सम्प्रदायों के प्रवर्त्तकों का जान पाने में।

20.1 भरत

प्राचीन आलंकारिकों में नाट्यशास्त्र के प्रणेता महर्षि भरत अद्वितीय हैं। रससम्प्रदाय के जनक भरतमुनि हैं। भरत की यह उक्ति ''**विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः**'' रसस्वरुप निर्णय में आदि सूत्र के रुप में प्रसिद्ध है। भरतमुनि काव्य में रस की प्रधानता को स्वीकार करते हैं इसलिए भरतमुनि ने कहा है- ''**न हि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते**''। अलंकार शास्त्र में नाट्यशास्त्र के प्रकरण में दो भरत नाम के व्यक्ति उपस्थित होते हैं। वृद्धभरत और दूसरा भरतमुनि। सामान्यत मनु याज्ञवल्क्य आदि के नाम में भी वृद्ध विशेषण प्रयुक्त होता है। वैसे ही भरत के साथ भी प्रयुक्त होता होगा। ऐसा कहा जाता है कि नाट्यशास्त्र ही मूलतः द्वादशसहस्री संहिता थी। उसके प्रणेता वृद्धभरत शब्द से संकेतित होता है। भरत नाम से सम्बद्ध नाट्यशास्त्रग्रन्थ में अपने विषय में कुछ भी नहीं लिखा। अतः रससम्प्रदाय के जनक महामुनि भरत के देशकाल आदि के विषय में बहुत अधिक मत भिन्नता है।

देश- प्राचीन शास्त्रकारों द्वारा अपने ग्रन्थ में अपने विषय में कुछ भी नहीं लिखा गया। उसी प्रकार भरतमुनि के जन्म स्थान देश के विषय में कहीं पर भी कुछ भी प्राप्त नहीं होता। भरतमुनि के देश के विषय में विद्वानों में मतभेद है। प्रायः ग्रन्थों में निवास स्थान के विषय में कुछ नहीं लिखा है। कुछ के मत में ये काश्मीर निवासी और कुछ के मत में उत्तरभारत के निवासी थे।

काल- पौराणिक वंशक्रम के अनुसार भरत व्यास, वाल्मीकि के पश्चात्वर्ती होते हुए भी संस्कृत भाषा के लेखकों से प्राचीन प्रतीत होते हैं। अभिनवगुप्त द्वारा भरतकृत नाट्यशास्त्र की राहुलक कृत टीका का स्मरण किया गया है। तमिल महाकाव्य मणिमेकलय में राहुलक का नाम आता है। मणिमेकलय नाम के उस तमिलग्रन्थ की रचना चतुर्थ ई0पू0 मानी जाती है। अतः भरत का समय इससे पूर्व होना चाहिए। कालिदास ने भी भरत को स्मरण किया है। अतः कालिदास से पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं। मैकडोनल महोदय के मत

टिप्पणी

में तो भरतमुनि 6वीं शताब्दी के आलंकारिक है। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री महोदय के मत में भरतमुनि का समय द्वितीय शताब्दी है। कालिदास के विक्रमोर्वशीय नाटक में भरतमुनि का नाम प्राप्त होता है। इससे ज्ञात होता है कि 8वीं शताब्दी से पूर्व नाट्यशास्त्र प्रसिद्ध था। अत: भरतमुनि का समय 4वीं शताब्दी से पूर्व माना जाता है।

कृति- सम्प्रति उपलब्ध भरत की कृति नाट्यशास्त्र है। कुछ लोग इसमें 36 और कुछ 37 अध्याय मानते हैं। अभिनवगुप्त ने अपनी भरतसूत्र टीका में 36 अध्यायों को लिखा है प्रत्येक अध्याय के प्रारम्भ एक शिव नमस्कारात्मक श्लोक लिखते हैं। जिससे काश्मीर शैव प्रत्यभिज्ञाशास्त्रीय 36 तत्वों का निर्देश होता है। यह भी सम्भावना है कि अभिनवगुप्त ही तत्वों के निर्देश करने के इच्छा से कुछ अध्यायों को विभाजन करके अध्यायों की संख्या बढा दी। उपलब्ध भरतसूत्र में 6000 श्लोक हैं। तथा कुछ गद्य भी है। इतिहासविद् कहते हैं कि नाट्यशास्त्र एक काल की रचना नहीं है, अपितु दीर्घकालिक साहित्य तत्त्व निर्णय के प्रयास का फल है। नाट्यशास्त्र में तीन अंश विद्यमान हैं। सूत्र और भाष्य- अंश प्राचीनतम है। 2 कारिका- मूल अभिप्राय को बोध कराने के लिए रची गई। 3 अनुवंश्यश्लोका - ये श्लोक भरत से भी प्राचीन आचार्यो द्वारा रचित हैं। अपने मत को प्रमाणित करने के लिए भरत द्वारा ये श्लोक जोड़े गये हैं। अतएव अभिनवगुप्त ने कहा - ''ता एता ह्यार्या एकप्रघट्टकतया, पूर्वाचार्यैर्लक्षणत्वेन पठिता, मुनिनातु सुखसग्रंहाय यथास्थानं निवेशिता:''

रस सम्प्रादायक के प्रवर्तक भरतमुनि है। उसका 'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रसनिष्पत्ति:' सूत्र ही रससिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। भरतमुनि के मत में काव्य में रस ही प्रधान है। रस के बिना काव्य सम्भव नहीं होता है। इनके बाद विश्वनाथ भी काव्य में रस की प्रधानता स्वीकार करते है। भरतमुनि रससम्प्रदाय के आदि आचार्य हैं। भरत ने अपनी नाट्यशास्त्र के 6ठे और 7वें अध्याय में रस के विषय में अपना मत प्रकाशित किया है।

पाठगत प्रश्न 20.1

1. रससम्प्रदाय के प्रवर्तक कौन है?
2. नाट्यशास्त्र के प्रणेता कौन है?
3. नाट्यशास्त्र के किस अध्याय में रस का उल्लेख प्राप्त होता है?
4. नाट्यशास्त्र में कितने अध्याय हैं?
5. भरतमुनि का समय क्या है?
6. नाट्यशास्त्र में कितने श्लोक हैं?

20.2 भामह

महर्षि भरत के बाद प्राचीन आलंकारिकों में भामह अद्वितीय थे। भामह अलंकारसम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं। उसके मत में ''काव्यं ग्राह्यमलंकारात्''। अलंकारविहीन नायिका का मुख जैसे असुन्दर होता है। उसी प्रकार शब्दार्थमय अलंकार रहित काव्य शरीर भी असुन्दर होता है। अतएव कहा गया- ''न कान्तमपि विभूषं विभाति वनितानन्म्''। भामह के मत में तो काव्य में अलंकार ही प्रधान होता है। इसी तथ्य को प्रमाणित करने के लिए भामह ने काव्यालंकार ग्रन्थ लिखा।

वंश परिचय- भामह रक्रिल गोमिन् का पुत्र था। गोमिन् पद बौद्धों में प्रयुक्त होता है। जैसे चन्द्रगोमी आदि अत: यह बौद्ध है और भी अपने काव्यालंकार के प्रारम्भ में भामह ने सार्वसर्वज्ञ की स्तुति की। अत: ये बौद्ध हैं, ऐसा बहुत से विद्वान सन्देह करते हैं। वस्तुत ये हिन्दूधर्मावलम्बी थे। क्योंकि यागादि और सोमपान की एवं रामायणीय पात्रों की प्रशंसा की है। इतना ही नहीं है, अपितु भामह ने अपोहवाद की आलोचना भी की है। अत: हिन्दूधर्मावलम्बी थे।

देश-भामह का देश काश्मीर है। भामह काश्मीरदेशवासी हैं ऐसा सभी पण्डित स्वीकार करते हैं।

काल- भामह का समय क्या है इस विषय में महान मतभेद है। भामह के स्थितिकाल में सबसे अधिक विवाद है। आज भी अनिर्णीत है। भामह और दण्डि के पूर्व व पर को लेकर भी पण्डित लोग विवाद करते हैं। कुछ भामह को दण्डि के पूर्ववर्ती मानते हैं। दूसरे विद्वान इसके विपरीत हैं। सौभाग्य से आज दण्डी भामह से परवर्ती स्वीकार किये गये अत: दण्डी सातवीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल में हुए तो भामह को 6वीं शताब्दी कहना चाहिए।

8वीं शताब्दी में उत्पन्न भट्टोद्भट ने भामह कृत काव्यालंकार की व्याख्या की। अत: भामह उससे पूर्वकालिक होते हैं। इस प्रकार भामह को 8वीं शताब्दी से पूर्ववर्ती माना जाना चाहिए।

भामह ने भास की समीक्षा की, कालिदास भास को स्मरण करते हैं, भामह तो कालिदास का स्मरण नहीं करते हैं। भामह भास और कालिदास के अन्तर्वर्तिकालिक हुये। अत: भामह का समय 6वीं शताब्दी हुआ।

कुछ पाश्चात्य विद्वान भामहकृत न्यास पद प्रयोग को देखकर भामह को न्यासकार जिनेन्द्रबुद्धि न्यासकार से परवर्ती मानकर 7वीं शताब्दी के परवर्ती स्थापित करते हैं। परन्तु यह मत निर्मूल है क्योंकि जिनेन्द्रबुद्धि भिन्न न्यासग्रन्थकार का भामह ने स्मरण किया है। उनके प्रत्यलक्षण को देखकर कुछ कहते हैं कि भामह धर्मकीर्ति और दिङ्नाग के मध्यकालिक 6वीं शताब्दी के मध्यवर्ती हुए। 7वीं के आचार्य भट्टि ने भामह के श्लोक का अनुकरण किया अत: भामह 6वीं शताब्दी के पूर्ववर्ती हुए।

टिप्पणी

कृति- भामह ने काव्यालंकार नामक एक ग्रन्थ की रचना की। वृत्तरत्नाकर में भामह नाम से कुछ श्लोक है। कुछ लोगों के अनुसार भामह ने एक छन्दग्रन्थ भी लिखा था। परन्तु आज वह उपलब्ध नहीं होता। काव्यालंकार में 6 परिच्छेद हैं प्रथम परिच्छेद में काव्य के साधन, उनके लक्षण एवं भेद वर्णित है। द्वितीय व तृतीय परिच्छेद में अलंकारों का वर्णन है। चतुर्थ परिच्छेद में भरत द्वारा कहे गये 10 दोषों का वर्णन है। पंचम परिच्छेद में न्याय विरोधी दोषों का वर्णन है। पंचम परिच्छेद में विवादास्पदपदशुद्धि का विचार किया गया है। प्राय: काव्यालंकार ग्रन्थ में 400 श्लोक हैं। भरत के बाद में यह ही ग्रन्थ अलंकारशास्त्र का सर्वमान्य ग्रन्थ है। इससे पूर्ववर्तित मेधविरुद्र का एक ग्रन्थ था परन्तु वह इस समय उपलब्ध नहीं है। काव्यालंकार में शब्दार्थयुगल को काव्य, भरत द्वारा कहे गये दशगुणों का माधुर्योज प्रसाद इन तीन गुणों में अन्तर्भाव, वक्रोक्ति को सम्पूर्ण अलंकार का मूल इन सिद्धान्तों की स्थापना की है। भामह रस को काव्य के मूलत्व के रुप में स्वीकार नहीं करते है। काव्य का प्राणरूप अलंकार को मानते हैं। भामह के मत में सभी अलंकार ''वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते''। परवर्ती काल में वक्रोक्ति को प्रथक् अलंकार के रूप में माना जाता है। भामह की वक्रोक्ति को आधार बनाकर कुन्तक ने वक्रोक्तिजीवितम् ग्रन्थ की रचना की। भामह प्रथक्ता से रस को स्वीकार नहीं करते हैं फिर भी रसवत् अलंकार होता है यह स्वीकार करते है। अप्रस्तुतप्रशंसा वक्रोक्ति इत्यादि अलंकारों के लक्षण विचारवेला में व्यंग्यार्थ को स्वीकार करते हैं।

अलंकार सम्प्रदाय के प्रवर्तक भामह है। इस सम्प्रदाय के अनुसार अलंकार ही काव्य का प्राणभूत होता है। ''शब्दार्थौ काव्यम्'' इस लक्षण से शब्द और अर्थ काव्य के शरीर है ऐसा स्वीकार करने से अलंकार दो प्रकार का होता है। शब्दालंकार और अर्थालंकार। भरतमुनि के मत में अनुप्रास, उपमा, दीपक एवं रूपक ये चार अलंकार होते हैं। भामह ने अपने ग्रन्थ में 39 अलंकार स्वीकृत किये हैं। ये ही अलंकार बढ़कर कुवलयानन्द में 125 हो गये। अलंकार सम्प्रदाय के प्रवर्तक रस तत्व को जानते थे। अत: वे कहते है कि रसादिवत् अलंकार होता है रस भी अलंकार है पृथक् तत्व हैं ऐसा नहीं मानते।

पाठगत प्रश्न 20.2

7. अलंकार सम्प्रदाय के प्रवर्तक कौन है?
8. काव्यालंकार ग्रन्थ के रचयिता कौन है?
9. भामह का देश कौन सा है?
10. भामह के पिता का नाम क्या है?
11. भामह का समय क्या है?
12. काव्यालंकार में कितने अलंकार स्वीकृत है?

20.3 दण्डी

संस्कृत जगत में काव्यशास्त्र के द्वितीयाचार्य के रुप मे दण्डी का स्मरण होता है।

जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभिधाऽभवत्।
कवी इती ततो व्यासे कवयस्त्वयि दण्डिनि॥

इस प्रकार प्राचीन सहृदय के वचनों से साहित्य में दण्डी की महती प्रतिष्ठा का अनुमान होता है। ''दण्डिनः पदलालित्यम्'' यह उक्ति दण्डी की प्रसिद्धि में प्रमाण है। दण्डी का वास्तविक नाम ज्ञात नहीं जैसे भवभूति और माघ के नाम के विषय में सुना जाता है। उसी प्रकार ब्रह्माण्डच्छत्रदण्ड इत्यादि दशकुमार के मंगलाचरण में दण्ड पद प्रयोग से दण्डी नाम हैं।

देश- दण्डी के निवास प्रदेश के निर्णय में अवन्तिसुन्दरी कथा प्रमाण है। उसके अनुसार दण्डी के पूर्व पुरुष गुर्जर प्रान्त में स्थित आनन्दपुर में रहते थे। उसके बाद वे दक्षिण देश में स्थित वर्तमान एलिचपुरसंज्ञा से प्रथमानमचलपुर नाम के स्थान पर आ गये। उससे इस कवि को दक्षिणात्यभाव सिद्ध होता है। कांची, कावेरी, चोल कलिंग, मलयानिल आदि दक्षिण के प्रसिद्ध स्थान आदि का दण्डी द्वारा किये गये उल्लेख ही प्रमाण है। दण्डी के दक्षिणत्यत्व में दूसरा प्रमाण का भी अनुमान किया जाता है कि काश्मीर देश में हुए आलंकारिक दण्डी के मत को प्रायः नहीं कहते हैं। अतः दण्डी का सुदूर दक्षिणवासी होना सिद्ध होता है।

काल- यद्यपि दण्डी के स्थितिकाल आज भी निर्णीत नहीं है तथापि उसके द्वारा दिये प्रेम अलंकार के उदाहरण में।-

इति साक्षात् कृते देवे राज्ञो यद्राजवर्मणः।
प्रीतिप्रकाशनं तच्च प्रेय इत्यवगम्यताम्॥

इस उदाहरण से राजवर्मन के समकालीन सिद्ध होते हैं। ऐतिहासिक कहते हैं कि राजवर्मा ही नरसिंह दूसरे नाम वाले कांचीनरेश 737-779 ईसवीं में सिंहासन आरुढ़ हुए थे।

दण्डी अवन्तिसुन्दरी कथा में बाणभट्ट और मयूर कवि को स्मरण करते हैं और उनको अभिनवगुप्त ने लोचन टीका में उदधृत-किया है इस प्रकार दण्डी के स्थिति काल की यह पूर्व-अपर सीमा है। अतः सामान्यः 715-790 ई0 दण्डी का समय रहा है।

10वीं शताब्दी में उत्पन्न अभिनवगुप्त लोचनग्रन्थ में लिखते है - ''यथाह दण्डी- गद्यपद्यमयी चम्पू''

10वीं शताब्दी के पूर्व में उत्पन्न प्रतीहारेन्दुराज उद्भट्टरचित काव्यालंकारसारसंग्रह के लघुवृति में लिखा है - ''अत एव दण्डिना 'लिम्पतीव' आदि।''

टिप्पणी

कन्नड्भाषा में अमोधवर्ष ने कविराजमार्ग नामक एक ग्रन्थ लिखा। ऐसा प्रतीत होता है कि इन्होनें स्पष्ट रूप से काव्यादर्श को आधार बनाकर इस ग्रन्थ को लिखा है। कविराजमार्ग नामक ग्रन्थ का रचनाकाल 815 से 875 ईस्वीं के मध्य माना जाता है।

दण्डी ने काव्यादर्श में जिस रीति से वर्णन किया है। उस रीति को आधार बनाकर वामन ने काव्यालंकारसूत्र की रचना की। अत: दण्डी वामन से पूर्ववर्ती स्वीकृत हैं। वामन का काल 779 ई से 813 ई तक मानते हैं।

इन सभी प्रमाणों से दण्डी के समय की परिसीमा 8वीं शताब्दी मानने योग्य है।

कृति-'त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च' इस पंक्ति का अनुसरण करके, काव्यादर्श, दशकुमारचरितम् और अवन्तिसुन्दरीकथा ये तीन ग्रन्थ दण्डी के कहे जाते हैं। कुछ लोग ''छन्दोविचित्यां सकलस्तत्प्रपंच: प्रदर्शित:'' इस दण्डि के वचन से 'छन्दोविचिति नामक भी दण्डि के ग्रन्थ की कल्पना करते हैं। अलंकार शास्त्रों में काव्यादर्श ग्रन्थ की गणना होती है और ग्रन्थ काव्यों में दशकुमारचरितम् एवं अवन्तिसुन्दरीकथा ये दो ग्रन्थ है।'

दण्डी का काव्यादर्श परम लोकप्रिय हैं, क्योंकि कन्नड भाषा में कविराजमार्ग नाम से इस ग्रन्थ का अनुवाद किया है। और सिंहलभाषा में ''सिय बसलकर'' नाम से अनुवाद हुआ है। इस ग्रन्थ में 4 परिच्छेद एवं 660 श्लोक हैं। द्वितीय परिच्छेद में 354 अलंकार, एवं लक्षण, उदाहरण एवं भेद कहे गये है। तृतीय परिच्छेद में शब्दालंकार की विवेचना के साथ यमक प्रपंच है, चतुर्थ परिच्छेद में दोषों की गवेषणा की गई है।

दण्डी ने रीति प्रस्थान का समर्थन किया है। साथ ही अलंकार प्रस्थान का भी समर्थन किया है। दण्डी के मत में उपमा आदि अलंकार और श्लेषादि गुण ये अलंकार पद से वाच्य होते हैं। दण्डी माधुर्यगुणवर्णन में रस की स्थिति के विषय में भी कहा कि कदाचित् वर्ण अथवा अर्थ के उत्कर्ष साधन के लिए माधुर्यगुण रस का परिपोषण करता है। सर्वप्रथम दण्डी ने काव्य में शब्द की प्रधानता कही है- शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली। जगन्नाथाचार्य ने इस मत का आश्रय लेकर ग्रन्थ लिखा।

पाठगत प्रश्न 20.3

13. काव्यादर्श के रचयिता कौन हैं?
14. दण्डी का काल क्या हैं?
15. दण्डी कहाँ से है?
16. काव्यादर्श में कितने परिच्छेद हैं?
17. काव्यादर्श में कितने श्लोक हैं?
18. काव्यादर्श का अनुवाद ग्रन्थ कौन सा हैं?

20.4 वामन

आलंकारिकों की सूची में वामन का महत्वपूर्ण स्थान हैं उसका काव्यालंकारसूत्र विषय प्रतिपादन की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं ये ही वामनाचार्य रीति सम्प्रदाय के जनक है। आलंकारिक वामन वैयाकरण काशिकाकार वामन से भिन्न हैं। आलंकारिक वामन काव्य में रीति की प्रधानता को स्वीकार करते हैं। अतएव रीतिसम्प्रदाय में अग्रगण्य वामनाचार्य हैं। वामनाचार्य के देश काल कृति के विषय में सामान्य परिचय दिया जाता है।

देश- वामन जयापीडनामक काश्मीरराज राष्ट्रकूटवंश के गोविन्दतृतीया के सभापण्डित और सचिव थे। राजतरंगिणीकार की ''वामनाद्याश्च मन्त्रिण:'' इस वचन से ज्ञात होता है। अतएव काश्मीर देश वामन का निवासस्थान था।

काल- जयापीड का शासनकाल 779-819 ई हैं। और गोविन्द का शासनकाल 794-813 ई मानते है अत: वामन का समय 8वीं शताब्दी के चरम भाग और 9वीं शताब्दी का आदि भाग निश्चित होता है।

अभिनवगुप्त ने वामन को अपने ग्रन्थ लोचन में ''वामनाभिप्रायेणायमाक्षेप:'' यह स्मरण किया है। अत: वामन का अभिनवगुप्तपूर्ववर्तित्व सिद्ध करते हैं। वामन ने कादम्बरी, उत्तररामचरित और शिशुपालवध का उदाहरण दिया है। अतएव वामन का काल भवभूति, बाण और माघ के परवर्ती सिद्ध होता है। इस प्रकार वामन का काल 8वीं शताब्दी के उत्तरभाग और 9वीं शताब्दी के आदि भाग निश्चित होता है।

कृति- वामन ने काव्यालंकारसूत्र ग्रन्थ की रचना की। वामन को काव्यालंकारसूत्र नामक ग्रन्थ स्वापज्ञवृति सहित प्रसिद्ध है। इस ग्रन्थ में अलंकार शास्त्र के सभी विषय सूत्रों द्वारा निरूपित हैं। इस ग्रन्थ में पांच अध्याय है यहां 319 सूत्र हैं। यहां अध्यायों को अधिकरण शब्द से व्यवहार करते हैं। प्रथम अधिकरण में काव्य, उसके प्रयोजन और रीति निरुपित हैं द्वितीय अधिकरण में पद वाक्य वाक्यार्थ दोषों का निरूपण हैं। तृतीय अधिकरण में गुणों का विवेचन किया गया है। जहां दशगुणों का शब्द और अर्थ वृति से बीस प्रकार से विभक्त किया, चतुर्थ अधिकरण में शब्दार्थालंकारों, पंचम अधिकरण में कुछ अशुद्धिया का निर्देश हैं। काव्यालंकार के प्राचीन टीकाकार सहदेव ने कहा कि वामन की कृति नष्ट हो गयी। उनकी कृतियां का उद्धार मुकुलभट्ट ने किया। वह ग्रन्थ आज प्राप्त होता है। वामन के कुछ विशिष्ट सिद्धान्त हैं 1. गुण अलंकारों से भिन्न है, 2. रीति तीन प्रकार की है, 3. वक्रोक्ति की लक्षणरुपता 4. विशेषोक्ति का लक्षण वैचित्र्य, 5. समग्र अर्थालंकार प्रपंञ्च की उपमारूपकता। वामन ने रीति को काव्य की आत्मा स्थपित किया। यद्यपि प्राचीन विद्वानों ने रीति को निरूपित किया फिर भी रीति काव्य की आत्मा है, वामन ने सर्वप्रथम कहा।

रीति सम्प्रदाय के प्रवर्तक वामन हैं, उनके मत में रीति काव्य की आत्मा हैं रीति क्या है, पद संघटना रीति। वे पदसंघटना गुण में आते हैं तो गुण सम्प्रदाय आत्मा परिणमत

टिप्पणी

है। रीति के भेदों का व्यवस्थित वर्णन दण्डी ने किया। गुण और अलंकारों का असंकीर्ण रूप प्रकट करके गुणों का शब्दार्थ तत्व से 20 प्रकार से निरुपित है। काव्य शोभा करने वाले धर्म गुण है। उनके अतिशय हेतु तो अलंकार होते हैं। ऐसा वामन मानते हैं। भामहादि रस को अलंकार स्वीकार करते हैं ऐसा वामन मानते हैं। भामहादि रस को अलंकार स्वीकार करते हैं वामन इस को कान्तिगुण स्वरूप कहकर उसकी आवश्यकता स्वीकार की है।

पाठगत प्रश्न 20.4

19. रीति सम्प्रदाय के प्रवर्तक कौन है?
20. वामन के रचित ग्रन्थ का नाम क्या है?
21. वामन का देश कौन-सा है?
22. वामन का समय क्या है?
23. वामन के मत में काव्य की आत्मा क्या है?
24. काव्यालंकारसूत्र में कितने अधिकरण है?
25. काव्यालंकारसूत्र में कितने सूत्र हैं?

20.5 रुद्रट

रुद्रटाचार्य आलंकारिकों में अग्रगण्य हैं। रुद्रटाचार्य का दूसरा नाम रुद्रभट्ट है। आलंकारिक सम्प्रदाय में रुद्रट नाम आलंकारिक रुप में अत्यन्त प्रसिद्ध है। भट्टवामुक के पुत्र रुद्रट शतानन्द नाम से परिचित हैं।

देश- रुद्रटाचार्य काश्मीरवासी थे। काश्मीर प्रान्त में ही शास्त्रचर्चा करते थे। अतः इस रुद्रटाचार्य का निवास स्थान कश्मीर देश था।

काल- रुद्रट द्वारा विरचित काव्यालंकार के उदाहरण राजशेखर भोजराज और प्रतिहारेन्दुराज ने अपने ग्रन्थ में लिखे हैं अतः राजशेखर आदि से पूववर्ती हैं। इस प्रकार इनका समय 9वीं शताब्दी का उत्तरभाग था।

10वीं शताब्दी के वल्लभदेव ने रुद्रट के ग्रन्थ के ऊपर टीका लिखी हैं अतः दसवीं शताब्दी से पूर्वकालिक रुद्राटाचार्य है।

जैकोवी महोदय ने रुद्रट को शंकरवर्मन नामक अवन्तिवर्मन पुत्र के समकालीन मानते हैं अतः इससे पूर्व का समय सिद्ध होता है।

कृति- रुद्रट ने काव्यालंकार नामक ग्रन्थ लिखा है। शृंगारतिलक के प्रणेता भी रुद्रभट्ट हैं। यहां रुद्रभट्ट और रुद्रट दोनों समान है ऐसा कुछ विद्वानों का मत हैं। एक पक्ष दोनों को भिन्न मानता है। अधिकांश विद्वान रुद्रट की तीन कृतियां मानते हैं 1. काव्यालंकार, 2. शृंगारतिलक 3. त्रिपुरवध काव्य।

रुद्रट का काव्यालंकार विषय विवेचन की दृष्टि से अतीव व्यापक है काव्य का प्रयोजन, काव्य का उद्देश्य, कविता सामग्री, अलंकार, भाषा, रीति, रस, वृतियां आदि सभी विषय यहां समालोचित हैं आचार्य रुद्रट अलंकार सम्प्रदाय के समर्थक है अत: काव्य में अलंकार ही प्रधान है इस ग्रन्थ में 16 अध्याय है और 734 पद्य हैं। अलंकारों का विभाजन और वर्गीकरण सर्वप्रथम रुद्रट ने किया है। अलंकारों के मूल तत्व चार हैं वे है- वास्तव, औपम्य, अतिशय और श्लेष। इन्होंने प्राचीन आलंकारिकों ने जिन अलंकारों को कहा है उनमें से कुछ अलंकारों का त्याग किया है और नूतनतया कुछ अलंकारों को स्वीकार किया। कुछ अलंकारों का नाम परिवर्तन किया हैं इस प्रकार वे ही सर्वथा अलंकारमार्ग के परिष्कृतकर्ता है। वस्तुत रुद्रट के ग्रन्थ का उद्देश्य अलंकारों की समीक्षा करना था। नव रसों के अतिरिक्त प्रेय अथवा वात्सल्य रस को मानते है।

पाठगत प्रश्न 20.5

26. रुद्रट का दूसरा नाम क्या है?
27. रुद्रट का काल क्या है?
28. रुद्रट का देश क्या है?
29. काव्यालंकार ग्रन्थ का रचयिता कौन है?
30. काव्यालंकार में कितने पद्य हैं?
31. काव्यालंकार में कितने अध्याय हैं?

20.6 अभिनवगुप्त

ध्वनि प्रस्थान के विशिष्ट आलंकारिक अभिनवगुप्त थे। ये न केवल आलंकारिक थे अपितु शैवदर्शनाचार्य और तन्त्ररहस्यज्ञ थे। प्राय: कथा सुनते है कि स्वयं आनन्दवर्धन अभिनवगुप्त नाम से प्रकट हुए। उसके बाद ध्वन्यालोक की लोचन टीका लिखी। अभिनवगुप्त काश्मीर देश के शारदाधाम के अत्यन्त प्रतिष्ठित सिद्ध और महापुरुष थे। यह जनश्रुति है कि अभिनव गुप्त शिव के अवतार है।

देश- अभिनवगुप्त के पूर्वज, अत्रिगुप्त गंगा यमुना के मध्यवर्ति स्थान को त्याग कर ललितादित्य के निर्देश से काश्मीर देश आ गये थे। अतएव अभिनवगुप्त का निवासस्थान

टिप्पणी

काश्मीर देश था ऐसा विद्वानों का मत है।

काल- आनन्दवर्धन के ध्वन्यालोक ग्रन्थ पर लोचन टीका रची। इससे ज्ञात होता है कि अभिनवगुप्त आनन्दवर्धन के परवर्ती है। अभिनवगुप्त का समय दशवीं शताब्दी का उत्तरभाग या 11 वीं शताब्दी का आदि भाग निश्चित होता है।

वंश परिचय- अभिनवगुप्त के पिता का नाम चुखल था। चुखल का दूसरा नाम नरसिंहगुप्त था, वे शिव के परम भक्त थे, उनकी माता का नाम विमला उनके पितामह का नाम वराहगुप्त था। उसके कनिष्ठ भ्राता का नाम मनोरथगुप्त था। उल्पलाचार्य प्रतीहारेन्दुराज और लक्षण गुप्त ये सभी अभिनवगुप्त के गुरु थे, कर्ण, मन्द्र ये दो उनके शिष्य थे।

कृति- अभिनवगुप्त की कृतियों में ध्वन्यालोक की लोचनटीका, भरतकृतनाट्यशास्त्र की अभिनव भारती टीका, और तन्त्रलोक ये तीन ग्रन्थ नितान्त प्रसिद्ध है। रससिद्धान्तप्रवर्तकता से ये साहित्य शास्त्र के महोपकारक हैं। भरतमुनि 8 रसों को स्वीकार करते है। परन्तु नाट्यशास्त्र के ऊपर अभिनवभारती टीका में अभिनवगुप्त ने 9 रसों का प्रतिपादन किया है। शान्त भी रस है ऐसा अभिनवगुप्त का मत है। सम्प्रति नाट्यशास्त्र का कितना माहात्म्य है यह ज्ञान तो अभिनव भारती टीका के बिना सम्भव नहीं है। आनन्दवर्धन ने अपने ध्वन्यालोक में वस्तुध्वनि, रसध्वनि और अलंकार ध्वनि की समान प्रधानता दिखाई है। परन्तु अभिनवगुप्त ने रसध्वनि की अधिक प्रधानता स्वीकार की है। वैसे ही जगत में रसध्वनि की प्रधानता सभी स्वीकार करते हैं। उन्होंने कहा है - रसेनैव सर्व जीवति काव्यम् ''न ही तच्छून्यं काव्यं किंचिदस्ति।'' इसी मत की आश्रय करके विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण ग्रन्थ की रचना की। पद्य काव्य का लक्षण कहा- ''वाक्यं रसात्मंक काव्यम्। भैरवस्तव:, क्रमस्तोत्र, बोधपञ्चदशिका'', मालिनीविजयवार्तिकम्, ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविमर्शिनी, ईश्वरप्रत्यभिज्ञाविवृतिविमर्शिनी से सब कृतियां अभिनवगुप्त की है।

अभिनवगुप्त के विषय में एक जनश्रुति सुनी जाती है कि भैरवस्त्रोत्र की आवृति करते हुए शिष्य के साथ अभिनवगुप्त गुफा के अन्दर प्रविष्ट हो गये। उसके बाद से वे अदृश्य हैं अतएव अभिनवगुप्त सिद्ध एवं महापुरुष माने जाते है।

पाठगत प्रश्न 20.6

32. अभिनवगुप्त का देश क्या है?

33. अभिनवगुप्त का काल क्या है?

34. लोचनटीका के कर्त्ता कौन हैं?

35. अभिनव भारती किस ग्रन्थ की टीका हैं?

36. अभिनवगुप्त की माता का नाम क्या हैं?

37. अभिनवगुप्त के पिता का नाम क्या हैं?

20.7 कुन्तक

आलंकारिक सम्प्रदाय में कुन्तकाचार्य भी अग्रगण्य हैं। वक्रोक्तिजीवितम् ग्रन्थ के रचयिता हैं। वक्रोक्तिकारकुन्तकाचार्य ध्वनिकार से परवर्ती है। ध्वनि प्रस्थान की ध्वन्यालोक से ध्वन्यालोक की लोचन टीका से परिष्कृत ध्वनिप्रस्थान के विरोधार्थ कुन्तक ने ''वक्रोक्तिजीवितम्'' ग्रन्थ की रचना की। वक्रोक्तिसम्प्रदाय के प्रवर्तक कुन्तक है। यह ग्रन्थ ही वक्रोक्तिसम्प्रदाय का मुख्य ग्रन्थ है।

देश- कुन्तक काश्मीर देश के निवासी थे। कुन्तकाचार्य की शास्त्र चर्चा काश्मीर में हुई। अत: ये काश्मीरी थे।

काल- वक्रोक्तिकार थे। ध्वनिप्रस्थान के विरोध के लिए वक्रोक्ति सम्प्रदाय शुरु किया। अत: ध्वनिकार के परवर्ती कुन्तक है। ध्वनिकार का समय 9वीं शताब्दी था। अत: 9वीं शताब्दी के बाद का समय कुन्तक का हैं।

जनश्रुति है कि अभिनवगुप्त के समकालीन थे। अभिनवगुप्त का समय 10वीं शताब्दी का उत्तरभाग व 11वीं शताब्दी का आदिभाग था। अत: यह कुन्तक का समय होना चाहिए। महिमभट्ट के 'व्यक्तिविवेक' ग्रन्थ में कुन्तकविरचित वक्रोक्तिजीवित के उदाहरण एवं समालोचना विद्यमान हैं। वक्रोक्तिजीवित का सार अलंकारसर्वस्व में है। अत: महिमभट्ट के समकालीन या पूर्ववर्ती थे। इस प्रकार कुन्तक का समय 11वीं शताब्दी हुआ।

कृति- कुन्तक की रचना वक्रोक्तिजीवितम् है वर्तमान में यह पूर्ण उपलब्ध नहीं है। इसमें 4 उन्मेष हैं जिसमें वक्रोक्ति के भेदों का सांगोपांग वर्णन किया हैं कुन्तकाचार्य ध्वनिवाद का कदापि समर्थन नहीं करते हैं वक्रोक्ति के माध्यम से ही शब्दार्थ का चमत्कार होता है। व्यंजना ध्वनि वक्रोक्ति का एक भाग है। कुन्तक के मत में वक्रोक्ति ही काव्य का प्राणभूत है। वक्रोक्तिजीवित में भामह, दण्डी और उद्भट्ट का उल्लेख किया है। किन्तु आनन्दवर्धन का उल्लेख नहीं किया। इसी प्रकार अभिनवगुप्त का भी अपनी टीका में कुन्तक का नाम नहीं लिखा। इससे यह मत आता है कि कुन्तक ध्वनिप्रस्थान के विरोधी थे। अथवा अभिनवगुप्त और कुन्तक समसामयिक है। ध्वनि का खण्डन करने के लिए वक्रोक्ति सम्प्रदाय प्रारम्भ किया।

वक्रोक्ति प्रसिद्ध अभिधनव्यतिरिक्त विचित्र अभिधन का नाम है। भामह ने अतिशयोक्ति एवं वक्रोक्ति का नाम कहा है। कुन्तक ने ध्वनि का अन्तर्भाव वक्रोक्ति में किया है। इस वक्रोक्ति का अन्य आचार्यों ने आदर नहीं किया। वक्रोक्ति भी एक अलंकार है ऐसा रुद्रट मानते हैं। इस प्रकार वक्रोक्ति सम्प्रदाय का खण्डन आचार्यों द्वारा किया गया।

टिप्पणी

पाठगतप्रश्न 10.7

38. कुन्तक का समय क्या है?

39. कुन्तक का देश क्या है?

40. कुन्तक के ग्रन्थ का नाम क्या है?

41. वक्रोक्ति सम्प्रदाय के जनक कौन हैं?

42. वक्रोक्तिजीवितम् में कितने उन्मेष हैं?

43. कुन्तक के मत में काव्य का प्राण क्या है?

पाठसार

साहित्य ग्रन्थों में आनन्द प्राप्त होता हैं। वहां भी हमें काव्य पढ़ने से आनन्द होता है। काव्यों में दोषों का विवेचन काव्यों में रसादि की प्रधानता का विचार इत्यादि तो अलंकारशास्त्र में होते है। फिर भी कुछ आलंकारिकों के मत में रस ही काव्य में प्रधान है कुछ, रीति, अलंकार, ध्वनि, वक्रोक्ति आदि को प्रधान मानते हैं। अतएव रीतिप्रस्थान, ध्वनिप्रस्थान, अलंकारप्रस्थान, रसप्रस्थान, और वक्रोक्ति सम्प्रदाय आदि का आविर्भाव हुआ। यहां आलंकारिकों के देश काल और कृतियों के विषय में चर्चा हैं। भरतमुनि नाट्य शास्त्र के प्रवर्तक है। चतुर्थ ईसवींपूर्व भरतमुनि ने काव्य में रस ही प्रधान है। ऐसा मानकर रस सम्प्रदाय का प्रारम्भ किया। छठी शताब्दी में काश्मीरवासी भामह ने काव्यालंकार ग्रन्थ की रचना की। भामह के मत में तो अलंकार ही प्रधान है अत: अलंकारसम्प्रदाय के प्रवर्तक भामह है। 7वीं शताब्दी में दक्षिणात्य आलंकारिक दण्डी ने काव्यादर्श ग्रन्थ लिखा। दण्डी अलंकार सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य हैं फिर भी दण्डी रीति विवेचना से प्रख्यात थे। 9वीं शताब्दी में काश्मीरवासी वामन ने काव्यालंकारसूत्र की रचना की। वामन के मत में काव्य में रीति ही प्रधान होती है। अत: ये रीति सम्प्रदाय के प्रवर्तक है। काश्मीरवासी रुद्रट ने काव्यालंकार ग्रन्थ लिखा। इनके मत में भी अलंकार प्रधान है।

काश्मीरवासी 10वीं शताब्दी में उत्तर में अभिनवगुप्त ने नाट्यशास्त्र पर अभिनवभारती टीका लिखी और ध्वन्यालोक पर लोचन टीका लिखी, अभिनवगुप्त रस प्रस्थान के एक आचार्य हैं। 11वीं शताब्दी में काश्मीरवासी कुन्तक ने वक्रोक्तिजीवितम् ग्रन्थ की रचना की। कुन्तक ने वक्रोक्ति सम्प्रदाय को प्रारम्भ किया। इस प्रकार इस पाठ में आलंकारिको के परिचय, सम्प्रदाय व सिद्धान्तों को समालोचना की गई है।

आपने क्या सीखा

- आलंकारिकों के विषय में जाना।
- उनके देश काल एवं कृतियों को जाना।
- उनके वंश परिचय को जाना।
- अलंकार सम्प्रदाय के प्रवर्तकों को जाना।

पाठान्तरप्रश्न

1. भरतमुनि के देशकाल एवं कृति के विषय में लेख लिखिए।
2. नाट्यशास्त्र का संक्षेप परिचय दीजिए।
3. भरतमुनि का सामान्य परिचय लिखिए।
4. भामह के देश काल व कृति के विषय में लिखिए।
5. काव्यालंकार का संक्षेप परिचय दीजिए।
6. भामह के काल के विषय में लिखिए।
7. दण्डी के देश काल एवं कृति के विषय में लिखिए।
8. दण्डी के काल के विषय में संक्षेप परिचय दीजिए।
9. काव्यादर्श का संक्षेप परिचय लिखिए।
10. वामन का संक्षेप में परिचय लिखिए।
11. वामन के देश काल व कृति के विषय में लिखिए।
12. काव्यालंकारसूत्र का संक्षेप में परिचय लिखिए।
13. रुद्रट के देश काल व कृति के विषय में लिखिए।
14. काव्यालंकार ग्रन्थ का सामान्य परिचय दीजिए।
15. अभिनवगुप्त के देश काल व कृति के विषय में लिखें।
16. अभिनवगुप्त की कृति के विषय में लघुटिप्पणी कीजिए।
17. अभिनवगुप्त का सामान्य परिचय दीजिए।

टिप्पणी

18. कुन्तक के देशकाल व कृति के विषय में लिखिए।

19. वक्रोक्तिजीवित ग्रन्थ पर निबन्ध लिखिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

20.1

1. भरतमुनि।
2. भरतमुनि।
3. छठे और 7वें अध्याय में।
4. 36 या 37 अध्याय।
5. तमिलग्रन्थ का रचनाकाल 4वीं ई.पू मानते है उससे पूर्ववत्ती भरत है।
6. 6000 श्लोक।

20.2

7. भामह।
8. भामह।
9. काश्मीर।
10. रक्रिल गोमिन्।
11. 6वीं शताब्दी।
12. 39

20.3

13. दण्डी।
14. 8वीं शताब्दी।
15. दाक्षिणात्य।
16. चार।

17. 660 श्लोक।

18. कविराज मार्ग।

20.4

19. वामन।

20. काव्यालंकारसूत्र।

21. काश्मीर देश।

22. 8वीं शताब्दी का उतर भाग, 9वीं शताब्दी का आदि भाग।

23. रीति।

24. पांच।

25. 319 सूत्र।

20.5

26. रुद्रट ।

27. नवमशतक के उत्तरभाग।

28. काश्मीर।

29. रुद्रट।

30. 734 पद्य।

31. 16 अध्याय।

20.6

32. काश्मीर।

33. 10वीं शताब्दी का आदिभाग, अथवा 11वीं शताब्दी का उत्तरभाग।

34. अभिनवगुप्त।

35. नाट्यशास्त्र।

36. विमला।

37. नरसिंह गुप्त।

20.7

38. एकादशशतम।

39. काश्मीर देश।

40. वक्रोक्तिजीवितम्।

41. कुन्तक।

42. चार उन्मेष।

43. वक्रोक्ति काव्य का प्राण।

क्र.सं.	नाम	देश	काल	कृति
1.	भरत	काश्मीर	4 वीं शताब्दी से पूर्व	नाट्यशास्त्र
2.	भामह	काश्मीर	6 वीं शताब्दी	काव्यालंकार
3.	दण्डी	दाक्षिणात्य	7 वीं शताब्दी	काव्यादर्श
4.	वामन	काश्मीर	9 वीं शताब्दी	काव्यालंकारसूत्र
5.	रुद्रट	काश्मीर	9 वीं शताब्दी	काव्यालंकार
6.	अभिनवगुप्त	काश्मीर	10 वीं शताब्दी	अभिनवभारती, लोचनटीका, तन्त्रलोक
7.	कुन्तक	काश्मीर	11 वीं शताब्दी	वक्रोक्तिजीवितम्

21

आलंकारिक परिचय-2

कवि साहित्य के निर्माण के लिए प्रयत्न करते हैं परन्तु अज्ञात पूर्वकता से ही साहित्य में अलंकारों का आत्मप्रकाश होता है। जैसे विश्व के प्राचीनतम ऋग्संहिता में ऋषियों ने अज्ञात पूर्वकता से ही अलंकारों का प्रयोग किया।

ऋग्वेद में उपमा रुपक अतिशयोक्ति अनुप्रास इत्यादि अलंकारों का प्रयोग है। अग्निपुराण में काव्य विभाग, काव्य की रीति, काव्य के गुण इत्यादि विषय वर्णित हैं। इसमें भी आगे साहित्यशास्त्र के विवेचन के लिए अलंकारशास्त्र का भी समागम हुआ। प्राचीन आलंकारिकों ने काव्य के विषय में बहुत से मत प्रदान किये। काव्य में प्राणभूत कौन होता है। इस विषय को लेकर आलंकारिकों के मतसाम्य और मतवैषाम्य दोनों दिखाई देते हैं। आनन्दवर्धन ने अपने ग्रन्थ ध्वन्यालोक में ध्वनि को काव्य की आत्मा कहा है और ध्वनिविरोधी मत को उपस्थापित कर खण्डन किया। उसके बाद मम्मट ने काव्यप्रकाश लिखा। उन्होंने काव्य का लक्षण ''तददोषो शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि'' कहा है। इस लक्षण को खण्डित करके विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण लिखा। उन्होंने काव्य का लक्षण दिया- ''वाक्यंरसात्मकं काव्यम्।'' इसके बाद जगन्नाथ ने इसका खण्डन करके रसगंगाधर ग्रन्थ में ''रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्'' लिखा। इस प्रकार आलंकारिकों ने काव्य के विषय में अपने सिद्धान्तों को प्रतिपादन किया।

भारतीय परम्परा में विद्वानों ने अपने ग्रन्थों में अपना परिचय नहीं दिया। इसलिए इन विद्वानों के देश काल और कृति के विषय में विचार दुष्कर है। परन्तु ध्वनिकार के मत को मम्मट ने स्वीकार किया, मम्मट के मत का विश्वनाथ ने खण्डन किया। इस प्रकार आनन्दवर्धन, मम्मट और विश्वनाथ आदि के मध्य पौर्वापर्य सम्बन्ध जान सकते हैं। कुछ ग्रन्थों में तत्कालीन राजाओं के नाम उपलब्ध होते हैं। इन प्रमाणों से आनन्दवर्धन, मम्मट विश्वनाथ, जगन्नाथ इनके विषय में देश काल और कृति के विषय में अनुमान किया जाता है। यही इस पाठ का विवेच्य विषय है।

उद्देश्य-

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे-

- ध्वनिकार का परिचय जान पाने में;
- ध्वनिकार की कृति को जान सकने में;
- किसने किस सम्प्रदाय की स्थापना की, यह जान पाने में;
- आलंकारिकों के देश, काल व कृतियों का ज्ञान प्राप्त कर पाने में; और
- आलंकारिकों के वंश परिचय का ज्ञान कर पाने में।

टिप्पणी

21.1 आनन्दवर्धन

आनन्दवर्धन काव्यशास्त्रकाश में समुज्ज्वल नक्षत्र हैं। काव्यशास्त्र के इतिहास में आनन्दवर्धन ने एक उज्ज्वल अध्याय की रचना की। आनन्दवर्धन के बिना अलंकारशास्त्र कदापि पूर्ण नहीं होता। काव्य जगत में ध्वन्यालोक का प्रवेश महान सौभाग्य की बात है। आनन्दवर्धन ने काव्य में ध्वनि ही प्रधान है, यह मानकर ध्वनिसम्प्रदाय आरम्भ किया। ध्वन्यालोक में अभाववादी, लक्षणावादी, और अनिर्वचनीयतावादियों के मत का खण्डन करके सर्वप्रथम ध्वनि का प्रतिपादन किया। इस समय उस ध्वनिकार के देशकाल व कृति के विषय में समालोचना करते हैं।

देश- आनन्दवर्धन काश्मीर क्षितिपाल अवन्तिवर्मन के सभापण्डित थे उसका प्रमाण यह श्लोक है।

मुक्ताकणः शिवस्वामी कविरानन्दवर्धनः।
प्रथां रत्नाकरश्चागात् साम्राज्येऽवन्तिवर्मणः॥

अतः यह सिद्ध है कि आनन्दवर्धन काश्मीरवासी थे।

काल- अवन्तिवर्मन के सभापण्डित होने से अवन्तिवर्मन का समय 855-883 ई ही आनन्दवर्धन का भी समय है।

वंशपरिचयः - आनन्दवर्धन के पिता का नाम नोणभट्ट था। कुछ लोग ध्वनिकार और ध्वन्यालोककार को समान मानते हैं और वह आनन्दवर्धन है। जिसका प्रमाण राजशेखर का यह श्लोक है-

ध्वनिनातिगम्भीरेण काव्यतत्वनिवेशिना।
आनन्दवर्धनः कस्य नासीदानन्दवर्धनः॥

टिप्पणी

परन्तु ध्वन्यालोक के टीकाकार अभिनवगुप्त कहते हैं कि ध्वनिकार और ध्वन्यालोककार समान नहीं है।। ध्वनि कारिका के ऊपर रचित वृति का नाम ध्वन्यालोक है। वहां कारिका ध्वनि कारिका को कहा गया है। वृति का नाम आलोक है। कुछ के मत में तो ध्वनिकार का दूसरा नाम सहृदय है।

कृति- इस आचार्य ने ध्वनिप्रस्थान के प्रवर्तन के लिए ध्वन्यालोक ग्रन्थ की रचना की। ध्वन्यालोक का दूसरा नाम सहृदयलोक या काव्यालोक है। आनन्दवर्धन के ध्वन्यालोक के अतिरिक्त विषमबाणलीला, अर्जुनचरितम् देवीशतकम्, ये तीन कविता ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। ध्वन्यालोक में तीन अंश है। कारिका, वृति एवं उदाहरण। अनेक कवियों की रचनाओं से उदाहरण संकलित है। परन्तु कारिका एवं वृति स्वयं रचित है। कुछ लोग कहते है कि आनन्दवर्धन ने किसी अज्ञात नाम की कृति से कारिका स्वीकार की है। केवल वृति ही आनन्दवर्धन की रचना है। इस ग्रन्थ में 129 कारिका है 4 अद्योत है। प्रथम उद्योत में ध्वनि विरोधी मतों का निराकरण करके काव्य की आत्मा ध्वनि की स्थापना की है। उसके बाद वस्तु ध्वनि, अलंकार ध्वनि और रस ध्वनि का प्रतिपादन किया है। पुनः ध्वनि दो प्रकार की होती है। विवक्षितान्यपरवाच्यध्वनि और अविवक्षितवाच्यध्वनि। ध्वनि के दोनों विभागों को उदाहरणों से प्रतिपादन किया है।

द्वितीय उद्योत में अविवक्षितवाच्य ध्वनि के भेद, प्रेयस, रस ध्वनि के भेद, गुण अलंकारों के भेद, इत्यादि विषय समालोच्य है। तृतीया उद्योत में रीति, वृतियों का वर्णन है, चतुर्थ उद्योत में कवि प्रतिभा का और गुणीभूतव्यंग्य काव्य का वर्णन है।

ध्वनि प्रस्थान के प्रथम आचार्य आनन्दवर्धन है। ध्वन्यालोककार से पूववर्ती आचार्यो ने अलंकार, रीति, गुण, को काव्य की आत्मा माना था। उनमें से ये प्रथम है, जिन्होंने ध्वनि को काव्य की आत्मा माना है। तीन शक्तियों से शब्द और अर्थ का प्रतिपादन किया हैं अभिधा, लक्षणा और तात्पर्य। इन तीन शक्तियों के अतिरिक्त व्यञ्जना वृति होती है। ध्वनिवाद में व्याकरण के प्रसिद्ध स्फोटतत्व को स्वीकार किया है। काव्य में रीति गुण अलंकार का स्थान निर्णय करके ध्वनि का प्रतिपादन किया आनन्दवर्धन के मत में गुणादि केवल वाच्य वाचक चारुत्व के हेतु के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं। काव्य में शब्द और अर्थ स्वयं की प्रधानता को छोड़कर वाच्यातिरिक्त व्यंग्यार्थ का प्रतिपादन ही ध्वनि है। कहा है-

यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृत स्वाथौ।

व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः।।

ध्वनिवाद में गुणरीति अलंकार आदि सभी रसपर्यावसायी हैं। ध्वन्यालोककार के मत से प्रभावित अभिनवगुप्त ने लोचन टीका लिखी।

पाठगत प्रश्न 21.1

1. ध्वन्यालोककार का समय क्या है?
2. ध्वन्यालोककार का देश क्या है?
3. ध्वन्यालोककार के पिता का नाम क्या है?
4. आनन्दवर्धन के ग्रन्थों का नाम लिखें।
5. ध्वनिसम्प्रदाय के प्रवर्तक कौन हैं?
6. ध्वन्यालोक में कितनी कारिका हैं?

टिप्पणी

21.2 अप्पयदीक्षितः

आलंकारिकों में अप्पयदीक्षित का नाम महत्वपूर्ण है। ये न केवल अलंकारशास्त्र से निपुण है अपितु दूसरे शास्त्रों में भी इनकी निपुणता है। प्रायः सभी शास्त्रों में इनके ग्रन्थ है। अप्पय दीक्षित साहित्यिक, अद्वैती, विशिष्टाद्वैत, व्याकरण, आलंकारिक, और कवि है। इन्होंने प्रायः सौ ग्रन्थ लिखे है, उनमें से अलंकार सम्बन्धित तीन ग्रन्थ है। इनका अप्पय दीक्षित, अप्पदीक्षित और अप्पयदीक्षित इन तीन नामों से संस्कृत जगत में परिचय होता है। जगन्नाथ के रसगंगाधर में तीनों नाम सुने जाते हैं।

देश- अप्पयदीक्षित का जन्म दक्षिण भारत में हुआ था। तमिलनाडु प्रान्त के अन्तर्गत आर्काड्मण्डल स्थित अडयप्पल नामक गांव में जन्म हुआ। इस प्रकार अप्ययदीक्षित का देश तामिलनाडु प्रदेश था।

काल- इनका समय 7वीं शताब्दी था। जगन्नाथ ने अप्पयदीक्षित के चित्रमीमांसा ग्रन्थ का खण्डन किया है। अतः जगन्नाथ से पूर्व होना निश्चित है। अप्पयदीक्षित वेंकट प्रथम के निर्देश से कुवलयानन्द नामक ग्रन्थ की रचना की। वेंकट प्रथम का समय 1586-1613 ईस्वी था। यही काल अप्पयदीक्षित का अनुमित होता है। परन्तु उस वंश में अप्पय नाम के बहुत से विद्वान थे इस कारण से प्रकृत अप्पयदीक्षित का काल निर्धारण दुष्कर है।

वंश परिचय- ये रंगराजाध्वरीन्द के पुत्र थे। ये भारद्वाजवंशोत्पन्न थे। कुवलयानन्द में स्वयं लिखते है- ''इति श्रीमदद्वैतविद्याचार्यश्रीमत्भरद्वाजकुल-जलधिकौस्तभ-श्रीरंगराजाध्वरीन्द्र-वरसूनोः श्रीमदप्पयदीक्षितस्य कृतिः कुवलयानन्दः समाप्तः।।'' अप्पयदीक्षित के सभी पिता-पितामह आदि श्रोत्रिय ज्योतिष्टोमादियागों के आहर्ता सामवेदी थे। अद्वैती भी होकर शिव भक्ति पारायण थे। इनके पितामह आचार्य दीक्षित थे। इनके आश्रय दाता वेंकटराज थे।

कृति- बहुत ही विश्वसनीय प्रमाणों से ज्ञात होता है कि अप्पय दीक्षित ने सौ ग्रन्थों की रचना की। वेदान्त संबंधी, मीमांसा, व्याकरण, शिवाद्वेत, स्तोत्र अलंकार और काव्य आदि से सम्बन्धित ग्रन्थ है।

वेदान्तविषयग्रन्थ - 1 सिद्धान्तलेशसंग्रह, 2 न्यायरक्षामणि 3 कल्पतरुपरिमल 4 न्यायमुक्तावली 5 न्यायमणिमाला 6 न्यायमंजरी 7 अधिकरणपंजिका 8 तत्त्वमुक्तावली 9 मणिमालिका आदि

शिवाद्वैतपरायण ग्रन्थ- 1 शिरवरिणी, 2 रामायणतात्पर्य संग्रह, 3 भारततात्पर्य संग्रह, 4 शिवपूजाविधि, 5 आनन्दलहरी 6 शिवार्चनचान्द्रिका, 7 शिवाद्वैत निर्णय: आदि

मीमांसाशास्त्रपरक ग्रन्थ - 1 विधिरसायन, 2 सुखोपयोजिनी, 3 उक्रपराक्रम, 4 तन्त्रिकामीमांसा, 5 चित्रापट 6 धर्ममीमांसापरिभाषा आदि

व्याकरण में एक ग्रन्थ है ''पाणिनीयतन्त्रवादनक्षत्रमाला''

अलंकारशास्त्र में चार ग्रन्थ है - 1 कुवलयानन्द 2 चित्रमीमांसा 3 वृतिवार्तिक 4 लक्षणरत्नावली

स्त्रोतसंबंधी ग्रन्थ - 1 वरदराजस्तव: 2 इदंस्तवव्याख्या 3 आत्मार्पणस्तुति 4 मानसोल्लास: 5 आदित्यस्तोत्रम् 6 गंगाधरराष्टकम् आदि।

यहं कुछ ग्रन्थों का सामान्य परिचय देते हैं- अप्पय दीक्षित ने जयदेव विरचित चन्द्रालोक का आश्रय लेकर कुवलयानन्द ग्रन्थ की रचना की। वह ग्रन्थ अलंकारों के ऊपर टीका विशेष है। इसमें 273 श्लोक है। ये स्वयं कहते है कि चन्द्रालोक के अलंकारों के लेकर कुछ नवीन अलंकारों का प्रतिपादन किया है। चन्द्रालोक में सौ अलंकार है इन्होंने उनके साथ 15 अलंकार और जोड़ दिया। जैसा कि कहा है-

येषां चन्द्रालोके दृश्यन्ते लक्ष्यलक्षणश्लोका:।
प्रायस्त एव तेषामितरेषां त्वभिनवा विरच्यन्ते॥

इनका चित्रमीमांसा उत्कृष्ट ग्रन्थ है। इसमें केवल 12 अलंकारों का वर्णन है। इसमें कारिका की रचना के बाद अन्य आचार्यो के मतों को उपस्थित किया है। काव्य के ध्वनि, गुणीभूतव्यंग्य और चित्र ये तीन विभाग किये है। इसके बाद उपमालंकार का विचार किया है। 12 अलंकारों को उपमा के अन्तर्गत दर्शाया है। परन्तु जगन्नाथ ने चित्रमिमांसा का खण्डन किया है तथा चित्रमीमांसाखण्डन पुस्तक की रचना की।

वृत्तवार्तिक भी अलंकारशास्त्र का ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में दो परिच्छेद है। इसमें अभिधा व लक्षणा की चर्चा की गई है। व्यंजना के विषय में कुछ नहीं कहा गया। कुछ के मत में लक्षणरत्नावली भी अलंकारशास्त्र का ग्रन्थ है इसमें नान्दीपाठ, सूत्रधार, पूर्वरंग, प्रस्तावना आदि विषय वर्णित है।

पाठगत प्रश्न 21.2

7. अप्पय दीक्षित का समय क्या है?
8. अप्पय दीक्षित का देश कौन सा है?
9. अप्पय दीक्षित के पिता का नाम क्या है?
10. अप्पय दीक्षित के एक अलंकारशास्त्र के ग्रन्थ का नाम लिखिए?
11. किस आधार पर कुवलयानन्द की रचना की?
12. कुवलयानन्द में कितने श्लोक हैं?
13. वृत्तवार्तिका में कितने परिच्छेद हैं?
14. चित्रमीमांसा ग्रन्थ का खण्डन ग्रन्थ कौन सा है?
15. अप्पय दीक्षित का आश्रयदाता कौन है?

टिप्पणी

21.3 मम्मट

आलंकारिकों में मम्मट मूर्धन्य आचार्य हैं। संस्कृत साहित्य में एक भी छात्र नहीं होगा जो मम्मट को नहीं जानता हो। अलंकार साहित्य में जब तक मम्मट का उदय नहीं हुआ था तब तक ध्वनि विरोधी ग्रन्थों को लिख चुके थे। पर मम्मट ने ध्वनि विरोधियों को अधिक्षिप्त किया जिससे पुनः ध्वनि का विरोध करने का साहस नहीं कर सकें। इसलिए मम्मट को वाग्देवतावतार ध्वनिप्रस्थान परमाचार्य कहा जाता है। संस्कृत जगत ने राजानक उपाधि से विभूषित किया। मम्मट के देश काल एवं कृतियों के विषय में समालोच्य है।

देश- मम्मटाचार्य काश्मीर वासी भोजराज के परवर्ती है। मम्मट को राजानक उपाधि भी काश्मीरवासी प्रमाणित करती है।

काल- आनन्दवर्धन के ध्वनि प्रस्थान को सुदृढता से स्थपित करने के लिए मम्मट ने काव्यप्रकाश को लिखा। इस प्रकार मम्मट आनन्दवर्धन से परवर्ती है। मम्मटाचार्य ने अपने ग्रन्थ में अभिनवगुप्त के मत का उल्लेख किया। अभिनवगुप्त ग्यारहवीं शताब्दी में हुए थे। अतः उनसे परवर्ती हुए, पद्यगुप्त के नवसाहसाकंचम्पू काव्य में स्थित भोजराज प्रशंसा के श्लोक का उदाहरण काव्यप्रकाश में लिया है। नवसाहसांकचम्पूकाव्य का रचनाकाल ग्यारवीं शताब्दी है। भोजराज से परवर्ती थे। भोजराज का शासनकाल 993 ई. 1051 ई. थे। अतः मम्मटाचार्य का समय 11वीं शताब्दी था।

वंश परिचय- मम्मट के पिता का नाम जैयट था। मम्मट के अनुज कैयट और उव्वट थे। मम्मटाचार्य नैषधीयचरित ग्रन्थ के रचयिता श्री हर्ष के मामा थे। मम्मट काश्मीरी थे परन्तु संस्कृत शिक्षा की प्राप्ति के लिए शिक्षा की पीठ वाराणसी आ गये। इस प्रकार वाराणसी में रहकर ही काव्यप्रकाश की रचना की।

कृति- मम्मट की एक कृति काव्यप्रकाश है। मम्मट ने सम्पूर्ण काव्यप्रकाश की रचना नहीं की। काव्यप्रकाश दशमपरिच्छेदगत परिकर अलंकार तक रचना की थी उसके बाद के अवशिष्ट भाग अल्लटनाम के किसी विद्वान ने की है-

कृतोऽयं मम्मटाचार्यैर्ग्रन्थः परिकरावधिः।
प्रबन्धः पूरितः शेषो विधयाल्लटसूरिणा॥

मम्मट की विद्वत्ता के प्रमाण के लिए काव्यप्रकाश ही पर्याप्त है। मम्मट की दूसरी कृति शब्दव्यापारवृति है। मम्मटाचार्य ने संगीतरत्नमाला भी लिखा। परन्तु ये दोनों ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। परन्तु कुछ लोग नहीं मानते है। काव्य प्रकाश में दस उल्लास है। इस ग्रन्थ में 143 कारिका है। वस्तुत मम्मटाचार्य ध्वनिवाद के समर्थन के लिए काव्यप्रकाश लिखा। काव्यप्रकाश के तीन अंश है जैसे कारिका, वृति और उदाहरण। भरत की कुछ कारिकों का अपने ग्रन्थ में निवेश किया। अवशिष्ट कारिका स्वयं ने लिखी। वृति भी मम्मट ने रची। उदाहरण अन्य कवियों की कृतियों से संकलित है। प्रायः छः कारिका भरत के नाट्यशास्त्र से स्वीकृत है। परन्तु इस मत में भ्रान्ति है। मम्मट आनन्दवर्धन और अभिनवगुप्त के मत से प्रभावित होकर ध्वनिसिद्धान्त को सुदृढ़ करने के लिए काव्यप्रकाश के प्रथमोल्लास से काव्य रचना का उद्देश्य, काव्यलक्षण, काव्य के भेद वर्णित है, द्वितीयोल्लास में शब्दवृति और अर्थवृति का वर्णन हैं। तृतीयोल्लास में व्यञ्जना वृति का विस्तृत वर्णन है। चतुर्थोल्लास में ध्वनि के भेद एवं रसस्वरुप आलोचना वर्णित है। पंचमोल्लास में ध्वनिगुणीभूतव्यंग्य काव्य का उसके भेद वर्णित है, षष्ठोल्लास में चित्रकाव्य का वर्णन है। सप्तमोल्लास में दोषों का वर्णन, अष्टमोल्लास में काव्यगुणों का वर्णन है। काव्य प्रकाश की महत्ता इस बात से है कि भागवत गीता से भी अधिक टीकाएं काव्यप्रकाश पर उपलब्ध है। प्रायः संस्कृत में 75 टीकाएं हैं। संस्कृत से भिन्न भाषा में टीकाएं उपलब्ध हैं। अतः काव्यप्रकाश लोकप्रसिद्ध ग्रन्थ है।

पाठगत प्रश्न 21.3

16. मम्मट की उपाधि क्या है?
17. मम्मट का काल क्या है?
18. मम्मट का देश कौन सा है?
19. मम्मट के पिता का नाम क्या है?

20. मम्मट के ग्रन्थ का नाम क्या है?

21. काव्यप्रकाश में कितने उल्लास हैं?

22. काव्यप्रकाश में कितने कारिका है?

23. मम्मट ने कहाँ अध्ययन किया?

21.4 भोजराज

अलंकार साहित्य में भोजराज का नाम प्रसिद्ध है। महाराज भोज धारानगर के शासक थे। राजकार्य के साथ शास्त्रों की चर्चा करते थे। महाराज भोज का कविजनप्रियता तो सर्वजन प्रसिद्ध हैं। शास्त्रों में अधिक प्रीति थी। अपनी राजकीय सभा में विद्वानों का आह्वाहन सदा करते थे। उनके साथ स्वयं भी अध्ययन करते थे। इस प्रकार सरस्वतीकण्ठाभरणम्, श्रृंगारप्रकाश, रामायणचम्पू आदि ग्रन्थों की रचना की। साहित्य में महापाण्डित्य पूर्ण उज्ज्वल नक्षत्र थे।

देश- प्राचीन शिलाखण्डों पर महाराज के शासन काल और वंश का परिचय स्पष्टरूप में लिखा हुआ है। महाराज भोज मालवदेश के धारानगर के शासक और परमार वंश के थे। अत: भोज का देश मालवा निश्चित है।

काल- भोज 1018 ईसवी मे सिंहासनारुढ होकर 1063 ईसवीं तक शासनकार्य किया अत: भोज का समय ग्यारवी शताब्दी था। मालवराज काश्मीर के अनन्तराज के समकालीन थे।

स च भोजनरेन्द्रश्च दानोत्कर्ष विश्रुतौ।
सूरी तस्मिन् क्षणे तुल्यं द्वावास्ताम् कविबान्धवौ॥

इस राजतरंगिणी के वचन से ज्ञात होता है अनन्तराज 1020 - 1189 मिति विक्रमाब्द में स्थित थे। इसके अतिरिक्त 1078 ई में भोज के दान पत्र भी प्राप्त होता है। अत: इनका समय 1030 से 1110 ईसवी के मध्यवर्ती माना जाता है।

कृति- जगत में राजकार्य को करते हुए शास्त्राध्ययन करके शास्त्रादि की रचना करने वाले मानव दुर्लभ हैं। राजा भोजराज ने सरस्वतीकण्ठाभरणम, श्रृंगारप्रकाश, ये दो ग्रन्थ है। सरस्वतीकण्ठाभरण में पांच परिच्छेद हैं। प्रथम परिच्छेद में दोष एवं गुणों का विवेचन है। पदगत 16, वाक्यगत 16, तथा वाक्यार्थगत 16 आदि 64 दोषों का विवेचन है। इसी प्रकार शब्दगत 24, अर्थगत 24 दोषों का वर्णन है। द्वितीय परिच्छेद में 24 शब्दालंकारों, तृतीयपरिच्छेद में अर्थालंकारों, चतुर्थ परिच्छेद में उभयलंकारों एवं पञ्चम परिच्छेद में रस भाव, सन्धि एवं वृतियों का निरूपण है। रत्नेश्वर ने सरस्वतीकण्ठाभरण की रत्नदर्पणाख्या नाम से व्याख्या की है। यह व्याख्या तृतीय परिच्छेद तक उपलब्ध है। चतुर्थ परिच्छेद

की टीका जगदधर ने की एवं चतुर्थ पंचम परिच्छेद की जीवानन्द प्रणीत व्याख्या प्राप्त होती है।

श्रृंगारप्रकाश इनका दूसरा ग्रन्थ है। इसमें 36 प्रकाश है। प्रथम आठ प्रकाश में शब्दार्थ विषयक वैयाकरण के मतों का निरुपण है। नवें में गुण, दसवें में दोष ग्यारहवें मे महाकाव्य, बारहवें में नाट्य का संप्रपच निरूपण है। शेष 24 प्रकाशों में रस का सांगोपांग विवेचन है। भोजमत में तों श्रृंगार ही सर्वरसेश्वर है जैसे-

श्रृंगार वीर करुणादभुतरौद्रहास्य वीभत्सवत्सलभयानक शान्तनाम्नः।
अम्नासिषुर्दश रसान् सुधियों वयं तु श्रृंगारमेव रसनाद्रसनाम नाम॥

किन्तु जो श्रृंगार है वह न केवल युवाओं के परस्पर आकांक्षात्मक अपितु धर्मार्थकाम मोक्ष आदि चार प्रकार का है। काव्यशास्त्र के वन में श्रृंगारप्रकाश सर्वाधिक दीर्घकाय पुष्प सर्वोत्कृष्ट है। भोजराज का चम्पूरामायण काव्य भी प्राप्त होता है। परन्तु अलंकार सम्बन्धित ग्रन्थ नहीं है। अतः यहां चर्चा अनपेक्षित है।

पाठगत प्रश्न 21.4

24. भोजराज का देश कौन सा है?
25. भोजराज का काल क्या है?
26. सरस्वतीकण्ठाभरण का रचयिता कौन है?
27. सरस्वतीकण्ठाभरण में कितने परिच्छेद हैं?
28. श्रृंगारप्रकाश में कितने प्रकाश है?
29. भोजमत में काव्य में कौन सा रस प्रधान है?
30. चम्पूरामायण के कर्ता कौन है?

21.5 विश्वनाथ

संस्कृत काव्यशास्त्र में मम्मट के बाद विश्वनाथ अत्यन्त प्रसिद्ध है। काव्यप्रकाश के बाद विश्वनाथ का साहित्यदर्पण लोकप्रिय ग्रन्थ है। विश्वनाथ के जन्म समयादि के विषय में स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलते है। इसलिए उसका निरुपण कठिन प्रतीत होता है। अब विश्वनाथ के देशकाल एवं कृति के विषय में समालोचना की जा रही है।

देश- कविराज विश्वनाथ उत्कलदेशीय थे। क्योंकि विश्वनाथ श्रीनरसिंह के सभापण्डित और सन्धिविग्रहक थे। इन के पितामह भी श्रीनरसिंह राजा के मुख्य सभा सदस्य थे। श्रीनरसिंह का राज्य उत्कलदेश था। अतः विश्वनाथ का भी निवास स्थान उत्कलदेश ही है।

टिप्पणी

काल- कविराज विश्वनाथ मम्मट से अर्वाचीन थे। क्योंकि साहित्यदर्पण में मम्मट के काव्यलक्षण का खण्डन दिखाई देता है। विश्वनाथ जगन्नाथ से प्राचीन थे। क्योंकि जगन्नाथ ने रसगंगाधर में लिखा है यतु रसवदेव काव्यमिति साहित्यदर्पणे निर्णीतं तन्न। मम्मट और जगन्नाथ के मध्यवर्ती काल में विश्वनाथ हुए। साहित्यदर्पण के चौथे परिच्छेद में यवनराज अलाउद्दीन का स्मारक श्लोक है-

सन्धै सर्वस्वहरणं विग्रहे प्राणनिग्रहः।
अल्लावुद्दीननश्पतौ न सन्धिर्न विग्रहः॥

इस श्लोक में अल्लाउद्दीन खिलजी स्मृत होता है। यह 1310 ईसवी मे मर गये थे। निष्कर्ष रूप से विवेचन होता है कि ग्यारहवीं बारहवीं और तेरहवीं शताब्दी में हुए मम्मट श्रीहर्ष और जयदेव हुये । उनके वाक्य तददोषौ शब्दार्थौ, धन्यासि वैदार्भि, ''कदली कदली'' से स्पष्ट साहित्यदर्पण में उद्धृत हैं। पन्द्रहवीं शताब्दी में उत्पन्न हुए काव्यप्रदीप कर्ता ''गोविन्दठाक्कुर द्वारा तददोषौ शब्दार्थौ की विचार वेला में अर्वाचीननस्तु'' इत्यादि से विश्वनाथ का मत ही उपस्थापित था। इन सब कारणों से विश्वनाथ चौदहवीं शताब्दी के माने जाते हैं।

वंश परिचय- विश्वनाथ समृद्धकुल मे उत्पन्न हुए थे। इसके कुल का पाण्डित्य प्रसिद्ध है। विश्वनाथ के पिता चन्द्रशेखर थे विश्वनाथ के पिता चन्द्रशेखर ने पुष्पमाला, और भाषार्णव दो ग्रन्थों की रचना की। स्वयं साहित्यदर्पण में कहा है-

श्रीचन्द्रशेखर महाकवि चन्द्रसूनु श्रीविश्वनाथ कविराजकुलं प्रबन्धम्।
साहित्यदर्पणममुं सुधियो विलोक्य साहित्यतत्त्वमखिलम् सुखमेव वित्त॥

इससे प्रमाणित होता है कि चन्द्रशेखर के पुत्र विश्वनाथ थे। इनके पितामह नाम नारायणदास था जैसा कि साहित्यदर्पण में उल्लेखित है ''यदाहु-श्रीकलिंगभूमण्डलाखण्डलमहाराजधिराज श्रीनरसिंहदेवसभायाम् धर्मदत्तं स्थगयन्तः सकलहृदयगोष्ठीगरिष्ठकविपण्डितास्मत्पितामह श्रीनारायणदासपादाः।''

विश्वनाथ के पितामह के भाई चण्डीदास थे। चण्डीदास ने काव्यप्रकाश की 'दीपिका' नामक टीका की रचना की। विश्वनाथ के विशेषण सन्धिविग्रहक से पता चलता है कि ये जाति से ब्राह्मण थे।

कृति- प्रकाण्ड विद्वत्कुल उत्पन्न विश्वनाथ भी सर्वशास्त्र स्वन्तन्त्र महान विद्वान थे। ये पण्डितप्रवर न केवल संस्कृत भाषा जानते थे अपितु 18 भाषाओं को जानने के कारण इनको ''अष्टादशभाषावारविलासिनीभुजंग'' उपाधि प्राप्त थी। विश्वनाथ की कृति साहित्यदर्पण, काव्यप्रकाशदर्पण, राघवविलास महाकाव्य, कुवलयाश्वचरितकाव्यम् प्रभावतीपरिणयनाटिका, चन्द्रकलानाटिका नरसिंहविजयकाव्यम् और प्रशस्तिरत्नावली है।

इन कृतियों में सबसे प्रसिद्ध साहित्यदर्पण है। इसमें काव्य और नाटक का सर्वांगीण विवेचन है। साहित्यदर्पण काव्यशास्त्र का रत्नभूत ग्रन्थ है। इसमें 10 परिच्छेद हैं। प्रथम में काव्य

विवेक, द्वितीय में शब्दशक्ति, तृतीया ने रसनिरूपण, चतुर्थ में ध्वनि विवेक, पंचम में व्यञ्जनावृति, षष्ठ में काव्य विभाग, सप्तम में दोष प्रपंच, अष्टम में गुण निरूपण, नवम में रीतिनिरूपण, दशम में शब्दार्थलंकार विचार वर्णित है। विषयवस्तु की दृष्टि से विश्वनाथ ने मम्मट का ही अनुसरण किया है किन्तु कहीं कहीं मम्मट को दोष भी देते हैं विशेषकर काव्य के लक्षण के विषय में, लक्षण को खण्डन करके 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम् कहकर स्वयं का लक्षण स्थापित किया। साहित्यदर्पण पर अनेक टीकाए लिखी गई। जैसे आनन्ददास की लोचनाख्या टीका, महेश्वराख्य की विज्ञप्रिया टीका, जीवानन्दविद्यासागर की विमला टीका, कृष्णणमोहन की लक्ष्मी टीका, लोकमणिदाहालाख्या की कला टीका है। बाद के काव्य शास्त्र पर साहित्यदर्पण का स्पष्ट प्रभाव पड़ा है। रसविवेचन में अलंकार विरूपण में काव्यभेद विवेक में उसके पश्चाद्वर्ती साहित्यदर्पण पर उपजीवित है।

पाठगत प्रश्न 21.5

31. विश्वनाथ कहां के निवासी थे?
32. विश्वनाथ का काल क्या है?
33. साहित्यदर्पण ग्रन्थ के रचियता कौन है?
34. विश्वनाथ के पिता का नाम क्या था?
35. विश्वनाथ के पितामह का नाम क्या था?
36. साहित्यदर्पण में कितने परिच्छेद है?
37. विश्वनाथ के पिता के ग्रन्थ का नाम?
38. चण्डीदास के ग्रन्थ का नाम?

21.6 जगन्नाथ

आलंकारिकों में जगन्नाथ महत्वपूर्ण है। जगन्नाथ ने अनेक ग्रन्थों की रचना की। जगन्नाथ का रसगंगाधर आलंकारिक ग्रन्थों में अग्रगण्य है। जगन्नाथ विविध विषयों में महान पण्डित थे। पण्डितगज जगन्नाथ का अभ्युदय काव्यशास्त्र में नव्यपरम्परा का द्योतक है। इन्होंने काव्य सिद्धान्तों की नव्यन्यायपरम्परा से व्याख्या की।

देश– पण्डितराज कोण सीमा स्थान के त्रिलिंग ब्राह्मण थे। आन्ध्रप्रदेश के पूर्व गोदावरीजनपद में यह स्थान है। कुछ विद्वान कहते है कि पण्डितराज गुण्टूर जनपद के तेनाली प्रखण्ड मे दाउनूरु ग्राम में थे। यह अनुमान उनकी कुलपरम्परा के आश्रय से संभावित है। ऐसा प्रतीत होता है कि गुण्टूरजनपद से गोदावरी जनपद इनके पूर्वज गये होंगे। किन्तु जगन्नाथ का रसगंगाधर में इनके पिता वाराणसी में अवस्थिति यह प्रमाणित होता है। इस प्रकार

टिप्पणी

पण्डितराज की जन्म भूमि और विद्याभूमि वाराणसी थी तथा कर्मभूमि जयपुर, दिल्लीनगर, मधुपुरी, असमप्रदेश तथा अन्त में पुनः वाराणसी रही।

काल- ये मुगलशासक शाहजहाँ के सभापण्डित थे अतः इनका उसके काल में होना निश्चित है।

दिल्लीवल्लभापाणिपल्लवतले नीतं नवीनं वयः

दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा मनोरथान् पूरयितुं समर्थः।
अन्यैनर्ईपातैः परिदीयमानं शाकाय वा स्याल्लवणाय वा स्यात्॥

शाहजाहां सम्राट का शासनकाल 1628-1658 ई माना जाता है। पण्डितराज जीवितमु यह एक तेलेगुग्रन्थ है। अतः पण्डितराज का जन्मसमय 1600 ई था। वह स्वयं ही ''दिल्ली वल्ली भपाणिपल्लवतले नीतं नवीनं वयः'' कहते हैं। मुगल प्रासाद में प्रवेश का समय आयु तीस बतीस थी। वहां उन्होनें 15 वर्ष व्यतीत किये। जब उन्होंने देहली को छोड़ा उस समय उनकी आयु 45 वर्ष थी इस प्रकार इसका समय 1655 ई अनुमानित है अतः ये 17 वी शताब्दी के आचार्य है।

वंश परिचय- पण्डितराज तैलंग ब्राह्माण थे। उनके पिता पेरुभट्ट थे। इनकी माता लक्ष्मीदेवी। ज्ञानेन्द्रभिक्षु श्रीमहेन्द्र श्रीखण्डदेव और शेषवीरेश्वर गुरु थे।

श्रीमज्ज्ञानेन्द्रभिक्षोरधिगतसकलब्रह्मविद्याप्रपञ्चः।
काणादीराक्षपादीरपि गहनगिरो यो महेन्द्रादवेदीत्॥

जगन्नाथ ने पिता, पेरुभट्ट, ज्ञानेन्द्रभिक्षु से सकलविद्याओं का अध्ययन किया। इनके पिता पेरुभट्ट सर्वविधाधर थे। पण्डितराज सदैव पिता का अनुसरण करते थे। पिता के आशीर्वाद से सर्वविधाधर थे। प्रायः सभी शास्त्रों में जगन्नाथ का पाण्डित्य अतुलित था।

कृति- संस्कृत जगत में जगन्नाथ की कृति अधिक प्रशस्ति को प्राप्त हुई। उनकी कृतियों का विवरण प्रस्तुत है।

1. गंगालहरी - 52 पद्यात्मक गंगा स्तुति है।
2. सुधालहरी - 32 पद्यों मे सूर्य की स्तुति है।
3. अमृतलहरी - 11 श्लोकों में यमुना की स्तुति है।
4. करुणालहरी - 64 श्लोकों में विष्णु की स्तुति है।
5. लक्ष्मीलहरी - 41 पद्यों में लक्ष्मी की स्तुति है।
6. यमुनावर्णनचम्पू - यह चम्पू काव्य है।
7. आसफविलास - आसफरवां महोदय की प्रशस्ति है।

8. प्राणाभरणम् – कामरुपाधीश प्राणनारायण की प्रशस्ति है।

9. जगदाभरणम् – अदयपुराधीश राणाकर्णसिंह के पुत्र जगतसिंह की प्रशास्ति है।

10. चित्रमीमांसाखण्डन – अप्ययदीक्षितकृत चित्रमीमांसा ग्रन्थ का खण्डनात्मक आलोचना है।

11. मनोरमकुचमर्दनम् – सिद्धान्तकौमुदी की टीका मनोरमा का खण्डन है।

12. रसगंगाधर – अपूर्ण अतिप्रौढ अलंकारशास्त्र का ग्रन्थ है।

13. भामिनीविलास – कवितासंग्रह विशेष ग्रन्थ है।

रसगंगाधर ग्रन्थ में दो आनन है। यह ग्रन्थ अपूर्ण है। इसमें काव्यस्वरुप काव्यभेद, रसविवेक शब्दगुणों का लक्षण, अर्थगुणों का लक्षण, भाव लक्षण, ध्वनिविवेक, शक्ति विवेक और अलंकार निरूपण आदि विषयों का प्रतिपादन किया है।

जगन्नाथ किसी यवन युवती से आसक्त थे जिस कारण ब्राह्मणों ने जाति से च्युत कर दिया। उस यवन युवती के मर जाने पर जगन्नाथ राजाश्रय त्यागकर मथुरा आ गये। वहां पर 1674 ई में मृत्यु हो गई। मृत्यु से पूर्व प्रायश्चित करने के लिए सन्नद्ध थे लेकिन उस समय प्रसिद्ध पण्डित भट्टोजिदीक्षित और अप्पयदीक्षित ने अपमानित किया उस कारण उन दोनों का जगन्नाथ के साथ शास्त्रमत भेद ही कहा जाता है।

पाठगत प्रश्न 21.6

39. जगन्नाथ का समय क्या है?

40. जगन्नाथ का देश कौन सा है?

41. रसगंगाधर के रचयिता कौन है?

42. रसगंगाधर में कितने आनन है?

43. जगन्नाथ के पिता का नाम क्या है?

44. जगन्नाथ की माता का नाम क्या है?

पाठान्त प्रश्न

1. आनन्दवर्धन के विषय में लघु टिप्पणी लिखिए।

2. आन्नदवर्धन के देश काल कृति के विषय में लिखिए।

3. ध्वन्यालोक के विषय में लघु टिप्पणी लिखिए।

टिप्पणी

4. अप्पय दीक्षित के विषय में लघु टिप्पणी लिखिए।
5. अप्पय दीक्षित के देशकालकृति के विषय में लिखिए।
6. कुवलयानन्द के विषय में लघु टिप्पणी कीजिए।
7. मम्मटाचार्य के विषय में लघु टिप्पणी कीजिए।
8. मम्मटाचार्य के देश काल व कृति के विषय में लिखिए।
9. काव्यप्रकाश के विषय में लघु टिप्पणी की रचना कीजिए।
10. भोजराज के विषय में लघु टिप्पणी लिखिए।
11. भोजराज के देशकाल व कृति के विषय में लिखिए।
12. भोजराज की कृति के विषय में लिखिए।
13. विश्वनाथ के देश काल व कृति के विषय में लिखिए।
14. विश्वनाथ की कृति के विषय में लिखिए।
15. विश्वनाथ के विषय में लघु टिप्पणी लिखिए।
16. जगन्नाथ के देशकाल व कृति के विषय में लिखिए।
17. जगन्नाथ की कृति के विषय में लघु टिप्पणी लिखिए।

पाठसार

जो काव्य के निर्माण में और स्वरूप दोष गुण अलंकारादि की अवधारण में शक्ति को उन्मेष करता है। वह अलंकार शास्त्र है। जैसे व्याकरण भाषा में व्युत्पत्ति के लिए अपेक्षित है उसी प्रकार अलंकारशास्त्र भी काव्य में निपुणता के लिये अपेक्षित है। इस पाठ में आलंकारिकों के देशकाल कृति के विषय में चर्चा की गयी है। नवी शताब्दी के काश्मीरवासी आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक ग्रन्थ से ध्वनि प्रस्थान का आरम्भ किया। आनन्दवर्धन के मत में काव्य में ध्वनि ही प्रधान है। 17वीं शताब्दी में तमिलनाडु प्रदेशीय अप्पयदीक्षित ने कुवलयानन्द लिखकर आलंकारिकों में अग्रस्थान प्राप्त किया। 11वीं शताब्दी में काश्मीरवासी मम्मटाचार्य ने काव्यप्रकाश रचकर महती ख्याति प्राप्त की। 12वीं शताब्दी में मालवदेशीय भोजराज ने सरस्वतीकण्ठाभरणम् की रचना की। कविराज विश्वनाथ उत्कलदेशीय ने साहित्यदर्पण की रचना की। वाराणसीस्थ 17वीं शताब्दी के जगन्नाथ ने रसगंगाधर की रचना की। ये अन्तिम आलंकारिक हैं।

आपने क्या सीखा

- ध्वनिकार का परिचय एवं उनकी कृतियों को जाना।
- कौन किस सम्प्रदाय का प्रर्वतक है जाना।
- आलंकारिकों के देशकाल को जाना।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

21.1

1. 855-883 ई	2. काशमीर
3. नोणभट्ट	4. ध्वन्यालोक
5. आनन्दवर्धन	6. 129

21.2

7. 17 वीं शताब्दी	8. तमिलनाडुप्रदेश
9. रंगराजाध्वरीन्द्र	10. कुवलयानन्द
11. चन्द्रालोक	12. 273
13. छ परिच्छेद	14. चित्रमीमांसाखण्डन
15. प्रथम वेकेट	

21.3

16. राजानक	17. 11 वीं शताब्दी
18. काश्मीर देश	19. जैयट
20. काव्यप्रकाश	21. दश उल्लास
22. 143 कारिका	23. वाराणसी में

21.4

24. मालवदेश	25. 11 वीं शताब्दी

टिप्पणी

26. भोजराज	27. पंच परिच्छेद
28. 63 प्रकाश	29. शृंगार रस
30. भोजराज	

21.5

31. उत्कल देश	32. 14 वीं शताब्दी
33. विश्वनाथ	34. श्री चन्द्रशेखर
35. नारायणदास	36. दश परिच्छेद
37. पुष्पमाला , भाषार्णव	38. काव्यप्रकाश की दीपिका टीका

21.6

39. 17 वीं शताब्दी	40. वाराणसी
41. जगन्नाथ	42. दो आनन
43. पेरुभट्ट	44. लक्ष्मी देवी

छात्रों के सरल बोध के लिए आलंकारिकों के जन्म देश काल कृति की तालिका दी गई है।

क्र.सं	**नाम**	**देश**	**काल**	**कृति**
1.	आनन्दवर्धन	काश्मीर	9 वीं शताब्दी	ध्वन्यालोक
2.	अप्पयदीक्षित	तमिलनाडुप्रदेश	17 वीं शताब्दी	कुवलयानन्द
3.	मम्मटाचार्य	काश्मीर	11 वीं शताब्दी	काव्यप्रकाश
4.	भोजराज	मालवदेश	12 वीं शताब्दी	सरस्वतीकण्ठाभरण
5.	विश्वनाथ	उत्कलप्रदेश	14 वीं शताब्दी	साहित्यदर्पण
6.	जगन्नाथ	वाराणसी	17 वीं शताब्दी	रसगंगाधर

22

वृत्ति परिचय

संस्कृत साहित्य में वृत्ति शब्द बहुत से शास्त्रों में देखा जाता है परन्तु शास्त्र के भेद होने पर वृत्ति शब्द का अर्थ भेद हो जाता है। जैसे ‘पराथभिधनं वृत्ति:’ यह व्याकरण शास्त्र में प्रसिद्ध है। साहित्यशास्त्र में तो अर्थबोध के प्रति अनुकूल कोई व्यापार वृत्ति नाम से सुविख्यात है। वेद वेदान्तादि शास्त्रों में जो शास्त्र वाक्य होता है, वह शास्त्र वाक्य साक्षात् शास्त्रार्थ को प्रतिपाद्य करता है। साहित्यशास्त्र में प्राय: साक्षात् अर्थ का प्रतिपादन कभी नहीं होता। वहाँ तो लक्षणावृत्ति या व्यञ्जना वृत्ति का प्रयोग होता है। जैसे:– ‘भवत: क्व गृहम्’ – आपका घर कहाँ है इस प्रश्न का उत्तरकर्ता तो ग्राम के शीतत्व पावनत्व आदि धर्म का कथन करने के लिए गगायां घोष: यह उत्तर देता है। अर्थात् साक्षात् उत्तर न देकर लक्षणावृत्ति से उत्तर देता है। इसी प्रकार ‘सन्ध्यावदनं कुरू यह साक्षात्, माता पुत्र को नहीं कहती है अपितु गतोऽस्तमर्क:’ इस कथन से व्यंजना वृत्ति से ‘संध्यावन्दनं कुरू’ यह अर्थ बोध होता है। काव्यादि में लक्षणावृत्ति और व्यंजनावृत्ति का प्रयोग बहुत अधिक देखा जाता है। मूल अर्थ गुप्तरूप से विद्यमान रहता है। इस कारण से ही चमत्कार दिखाई देता है। शुरू में कोई वाक्य सुना जाता है। उसके बाद अभिधावृत्ति से शब्द के संकेतित धर्म स्मरण होता है। उसके बाद तात्पर्यवृत्ति से परस्पर पदार्थो का अन्वय बोध होता है। शब्दों के संकेतित अर्थ स्मरण के बाद कुछ बोध होता है। तब लक्षणावृत्ति का आश्रय लेते हैं। जैसे ‘गंगायाम् घोष:’ इसके जलप्रवाह में ग्राम की स्थिति असंभव होने से लक्षणावृत्ति से गंगा शब्द का गंगा तीर यह अर्थ प्रतिपाद्य होता है अर्थात् गंगा के किनारे घर है।

इसी प्रकार ‘गतोऽस्तमर्क:’ यहाँ ‘सूर्य अस्त हो गया’ इस अर्थ में तात्पर्य नहीं है। अत:एव व्यंजना वृत्ति से सन्ध्यावंदन करो यह अर्थ प्रतिपाद्य होता है। तात्पर्यवृत्ति से शब्दों का

अन्वयमुख होने से शब्द बोध प्रतिपाद्य होता है। इस पाठ में वृत्ति चतुर्य का संक्षेप अध्ययन करेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे :

- वृत्तियों के लक्षणादि जान पाने में;
- शब्दबोध प्रक्रिया को जानने योग्य हो पाने में;
- लक्षणावृत्ति को समझ पाने में;
- लक्षणावृत्ति को प्रयोग कर पाने में;
- कहाँ लक्षणा प्रवृत होती है, यह जान पाने में;
- वाक्य में स्वयं लक्षणा का प्रयोग कर पाने में;
- लक्षणा के प्रयोजन को समझ पाने में;
- व्यंजना वृत्ति को जान पाने में;
- व्यंजना वृत्ति से प्रतिपादित अर्थ को जानने में पारंगत हो पाने में;
- व्यंजना वृत्ति से व्यवहार कर पाने में;
- तात्पर्यवृत्ति के अर्थ व स्वरूप को समझ पाने में;
- कहाँ अभिधा से वाक्यार्थबोध नहीं होता, ऐसा जान पाने में और;
- तात्पर्यवृत्ति का प्रयोजन जान पाने में;

22.1 वृत्ति का लक्षण

शब्द श्रवण जन्यार्थ बोध के प्रति शब्द ही कारण है। कारण के होने पर कार्य संभव है। यहाँ भी अर्थबोध के प्रति अनुकूल कोई व्यापार होता है। आचार्यों के मत में इस व्यापार को ही वृत्ति कहते हैं। अर्थात् शब्द ही कारण है उस कारण के प्रति व्यापार ही वृत्ति कहते हैं। साहित्यशास्त्र में वृत्ति शब्द पारिभाषिक है। यहाँ शक्ति ही वृत्ति है।

22.2 वृत्ति के प्रकार भेद

वृत्ति प्रधानता अभिधा, लक्षणा व व्यञ्जना भेद से तीन प्रकार की है। कुछ लोग तात्पर्य को भी वृत्ति का भेद स्वीकार करते हैं। अत: वृत्ति चार प्रकार की है - अभिधा,

लक्षणा व्यंजना और तात्पर्य। वृत्ति के प्रकार में पण्डितों में मत भिन्नता दिखाई देती है।

कुछ आचार्य कहते हैं कि अभिधावृत्ति से ही सभी अर्थ प्रतिपादित होते हैं। अत: लक्षणादि वृत्ति स्वीकार करने का कोई प्रयोजन नहीं है। जैसे मुकुलभट्ट ने अपने 'अभिधवृत्तिमातृका' ग्रन्थ में कहा कि जो लक्षणा है वह अभिधा के अन्तर्गत ही है।

महिमभट्ट ने शब्द की एक ही अभिधावृत्ति स्वीकार की है। उनके मत में जहाँ अभिधा के बिना ही अर्थबोध होता है। वहां अनुमिति की सहायता ही होता है। अर्थात् लक्ष्यार्थ तो अनुमिति गम्य है। अपने ग्रन्थ व्यक्तिविवेक में लक्षणा को पृथक अस्तित्व स्वीकार नहीं किया।

आचार्य नागेशभट्ट ने अपने परमलघुमंजूषा नामक ग्रन्थ में पृथकरूप से लक्षणा एवं व्यंजना वृत्ति स्वीकार की है फिर भी अभिधवृत्ति जैसी लक्षणावृत्ति एकशक्ति के प्रकार भेद से उल्लेख किया।

इस प्रसंग में नैयायिकों का मत भी महत्त्वपूर्ण है। वे भी अभिधा और लक्षणावृत्ति को स्वीकार करते हैं। उनके मत मे व्यंजना वृत्ति को स्वीकार करने का कोई प्रयोजन नहीं है। नैयायिकों ने व्यंजनावृत्ति को खण्डित करने के लिए विविध ग्रन्थों एवं टीकाओं की रचना की। उनमें महिमभटट् विरचित व्यक्तिविवेक तथा माधवतर्कसिद्धान्तविरचित शक्तिवाद की टीका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। आचार्य जयन्तभट्ट ने भी न्यायमंजरी ग्रन्थ में व्यंजना वृत्ति का खण्डन करने का प्रयत्न किया है। क्योंकि वैशेषिक दर्शन को न्यायदर्शन के अंगरूप में गिना जाता है। अत: बहुत से वैशेषिक दार्शनिक भी व्यञ्जना वृत्ति को अस्वीकार कर इस मत का पोषण करते हैं। मीमांसक भी व्यंजना वृत्ति स्वीकार नहीं करते हैं। उनके मत में अभिधा और लक्षणा के अतिरिक्त जो अर्थ प्राप्त होता है। वह तो अर्थापत्ति प्रमाण से ही होता है। किन्तु परवर्ती काल में कोई भी अर्थापत्ति को वृतिरूप से स्वीकार नहीं करते हैं। वस्तुत: अर्थापत्ति प्रमाण को न्यायसम्मत में अनुमानवत् ही तुलनीय हैं।

किन्तु दूसरे वैयाकरणों के साथ अन्य आलंकारिक भी व्यंजना वृत्ति की प्रयोजनीयता को स्वीकार किया। इस प्रसंग में नागेशभट्ट ने लघुमंजूषा में कहा– वे वृत्तियाँ तीन प्रकार की है– शक्ति लक्षणा और व्यंजना। मुख्यार्थ बाधित हो या न हो, मुख्यार्थ के साथ संबंध हो या ना हो मुख्यार्थ प्रसिद्ध हो या अप्रसिद्ध हो, वाच्यार्थ के व्यतिरिक्त जो अर्थ उपलब्ध होता है, उसका उद्‌बोधक संस्कार विशेष ही व्यंञ्जना है। आचार्य आनन्दवर्धन ने ही पहली बार व्यंजना वृत्ति के ऊपर महत्व देकर ध्वनिप्रस्थान की प्रतिष्ठा करने के लिए ध्वन्यालोक की रचना की। इसके टीकाकार अभिनवगुप्त भी इस वृत्ति को स्वीकार करते हैं। अभिधा लक्षणा और तात्पर्य के साथ व्यंजना भी स्वीकार करते हैं।

व्यंजनावृत्ति के विषय में मम्मट का मत भी उल्लेखनीय है– कुछ आचार्य मानते हैं कि अभिधा लक्षणा व्यंजना वृत्ति के अतिरिक्त तात्पर्य नामक वृत्ति भी वाक्यार्थ प्रतिपादन में सहायक होती है। किन्तु आलंकारिक कहते हैं कि यद्यपि तात्पर्यवृत्ति वाक्यार्थ निर्णय

में सहायता करती है, यह वृत्ति नहीं है। पुनः कुछ के मत में वक्ता की इच्छा ही तात्पर्यवृत्ति है। जैसा कि भाषा परिच्छेद में कहा है- वक्तुरिच्छा तु तात्पर्य परिकीर्तितम्। अन्यों के मत में ईश्वरेच्छा ही तात्पर्यवृत्ति है। इस प्रसंग में यह कर सकते हैं कि नवीन नैयायिकों के ग्रन्थों में तात्पर्यवृत्ति का अलग से उल्लेख नहीं है। वैयाकरणों का मत भी नैयायिकों के मत के समान है। वेदान्ती भी तात्पर्य को पृथकता से स्वीकार नहीं करते हैं।

किन्तु कुछ आलंकारिक आचार्य ऐसे भी है जो तात्पर्यवृत्ति को महत्वपूर्ण वृत्ति के रूप से स्वीकार करते हैं। आचार्य धनिक ने अपने 'काव्यनिर्णय' ग्रन्थ में कहा है- 'यावत्कार्य प्रसारित्वात् तात्पर्यं न तुलाधृतम्' अर्थात् उनके मत में अभिधवृत्ति और लक्षणावृत्ति को अतिरिक्त जो रसादि अर्थ होते है, तात्पर्यवृत्ति की सहायता से उनका ज्ञान होता है। प्रयोजनानुसार तात्पर्यवृत्ति सर्वप्रकार के अर्थों को प्रकाशित करने में समर्थ होती है। धनिक के समान मम्मट, विश्वनाथ आदि आलंकारिक भी वृत्ति चतुष्ट्य को स्वीकार करते हैं अर्थात् वे तात्पर्य वृत्ति मानते हैं मम्मट ने तात्पर्यवृत्ति के अस्तित्व को समर्थन करते हुए काव्यप्रकाश में कहा- अभिधा तात्पर्य लक्षणात्मक व्यापारत्रयातिवर्ती ध्वननादिव्यापरोऽनपह्नवनीय एव'। परवर्ती आचार्य विश्वनाथ भी तात्पर्य वृत्ति के विषय में मम्मटानुयायी है। सिद्धान्तमुक्तावली कृत विश्वनाथ न्यायपंचान ने कहा 'आसत्त्यादिवत् तात्पर्योऽपि शाब्दबोधं प्रति कारणमात्रमिति।' काव्य जगत में अभिधा, लक्षणा, व्यञ्जना और तात्पर्य वृतिचतुष्ट्य ईप्सित हैं।

22.3 अभिधा

अभि-उपसर्ग पूर्वक 'धा' धातु से अ्प्रत्यय से अभिधा शब्द निष्पन्न होता है। प्रत्येक शब्द का सर्वजन प्रसिद्ध कुछ मुख्य अर्थ होता है। सूर्य चन्द्र आदि के उच्चारण से उनके अपने अर्थ की प्रतीति होती है। शब्द जिससे, जिस व्यापार या वृत्ति से लोकप्रसिद्ध अर्थ का बोध कराता है वह व्यापार या वृत्ति अभिधा कही जाती है। आचार्य मम्मट ने अभिधा का लक्षण निरूपित किया- ''स मुख्याऽर्थस्तत्र मुख्यो व्यापारोऽस्याभिधोच्यते।'' शब्द के जिस व्यापार या शक्ति से शब्द के संकेतित अर्थ का बोध होता है वह अभिधा कही जाती है यह अभिधा शक्ति या संकेत कहलाती है। शक्ति विषयक समालोचना में विश्वनाथ ने कहा - ''यत् पदेन सह पदार्थस्य सम्बन्ध एवं शक्तिः''। इस शब्द से यह अर्थ बोध होना चाहिए या ईश्वरेच्छा है वह शक्ति कही जाती है-'' शक्तिश्च पदेन सह पदार्थस्य संबन्ध''। सा चास्माच्छब्दादयमर्थो बोधब्य इतीश्वरेच्छारूपा'' यह सिद्धान्तमुक्तावली में कहा है। यह संकेत शब्द का शक्तिग्राहक है। अर्थात् एक निर्दिष्ट शब्द से एक निर्दिष्ट अर्थ ही बोध होना चाहिए। जैसे घटशब्द से संकेतितार्थ कम्बुग्रीवादिमान पिण्ड होता है। क्योंकि इस घटशब्द से कम्बुग्रीवादिमान पिण्ड यह अर्थ बोधव्य ईश्वरेच्छा है। इसी प्रकार 'आनय' इसका भी अभिधा वृत्ति से आनयन रूप क्रिया का बोध होता है घटशब्द से अभिध वृत्ति द्वारा कम्बुग्रीवादिमान् पिण्ड ही आता है। और वह वाच्यार्थ

होता है। विश्वनाथ साहित्यदर्पण में अभिधा का लक्षण कहा- ''तत्र संकेतितार्थस्य बोधनात् अग्रिमाभिधा''। अर्थात् साक्षात् संकेतित अर्थ में शब्द का जो मुख्य वृत्ति अन्तर अनुजीवक व्यापार वृत्ति है वह अभिधा है। शब्द के संकेतितार्थ जिस वृत्ति से बोध होता है वह अभिधा है। यह मुख्यवृत्ति है। अर्थ बोध के लिए यह सबसे पहले प्रयुक्त होती है। लक्षणा व्यंजना वृत्तियों की प्रवृत्ति से पूर्व अभिधावृत्ति प्रवृत होती है इस कारण लक्षणा और व्यंजनावृत्ति अभिधावृत्ति पर आश्रित है। अभिधावृत्ति में अन्य वृत्ति का आश्रय नहीं होता है। शक्त्यपरपर्याय संकेतितार्थ बोध जनक व्यापार अभिधा है।

'घटमानय ''यहा अभिधवृत्ति से घटशब्द का कम्बुग्रीवादिमान् पिण्ड यह संकेतितार्थ बोध होता है। घटम् इस शब्द के साथ कम्बुग्रीवादिमत पदार्थ का सम्बन्ध है यह ज्ञान अभिधवृत्ति से सम्भव है। क्योंकि इस शब्द से कम्बुग्रीवादिमत पदार्थ का ज्ञान हो यह ईश्वरेच्छा है। वह संकेतितार्थ अभिधावृत्ति से ही बोध होता है। जिस शब्द से संकेतित अर्थ का प्रतिपाद्य होता है वह वाचक कहा जाता है। जैसे घट शब्द वाचक है। अभिधवृति से जो अर्थ प्रतिपाद्य होता है वह वाच्य है जैसे कम्बुग्रीवादिमान पदार्थ यह वाच्यार्थ है।

22.4 अभिधा प्रक्रिया। संकेतग्रह का उपाय

कोई संकेत ज्ञान विशिष्ट समुत्पन्न जन किसी संकेत ज्ञान विशिष्ट समुत्पन्न द्वितीय जन को लक्ष्य करके 'गामानय' यह वाक्य कहता है। इसके बाद द्वितीय जन गो आनय रूप कर्म को करता है। संकेतज्ञानहीन कोई तृतीय जन यह सब कुछ देखता है। उसके बाद 'अश्वमानय' इस वाक्य का प्रयोग करता है। तब अश्व आनय रूप कर्म करता है। यह भी तृतीय जन देखता है। द्वितीय वाक्य में अश्वपद सन्निधान से गो भिन्न वस्तु का आनयन सम्भव है। इससे ज्ञान होता है कि गो शब्द का संकेत सास्नालंगूल वाला प्राणी है, अश्व शब्द का घोटक में संकेत होता है यह जानता है। उसके बाद 'गां बधान' इस वाक्य के श्रवण से गो बन्धान रूप कार्य करता है। बधान इस भिन्न क्रियापद सन्निवेश से भिन्न कार्य पैदा होता है। इससे आनयपद का आनयन किया में बधानपद का बन्ध ानक्रिया में संकेत है यह ज्ञान होता है। पदों के त्याग संयोग से संकेत रहित जन को संकेत ज्ञान पैदा होता है।

और किसी प्रसिद्धार्थ से बालक सन्दिग्ध संकेत शब्द के संकेत को अवधारण करता है। जैसे ''इह प्रभिन्नकमलोदरे मधूनि मधुकर: पिबति'' यहाँ मधु करता है इस व्युत्पत्ति से मधुकर शब्द का भ्रमर में संकेत मधुमक्षिका में समझता है। तब भ्रमर पंकज में पूर्व मधुपान को करता है। यह दृश्य हमारे द्वारा देखा गया। इससे कमलदसमभिहार से मधुकर शब्द का भ्रमर ही संकेत होता है।

कुछ के अनुसार केवल शब्द प्रमाण से संकेत ज्ञान होता है। साहित्यदर्पणकार ने कहा ''आप्तोष्पदेशात्''। जैसे'' अयम् अश्वशब्दवाच्य:'' यह आप्त द्वारा कहने पर वहां

टिप्पणी

प्रामाणिकत्वनिश्चय से बालक अश्वशब्द का घोटक में संकेत की अवधारण करता है ये तीनो प्रदर्शन मात्र है। व्याकरणादि भी अन्य संकेतग्रहोपाय ग्राह्य है- जैसे कहा ही-

शक्तिग्रहं व्याकरणोपमानकोशाप्तवाक्यात् व्यवहारतश्च।
वाक्यस्य शोषात् विवृतेर्वदन्ति सान्निध्यतः सिद्धपदस्य वृद्धाः॥

पाठगत प्रश्न 22.1

1. व्याकरणशास्त्र में प्रसिद्ध वृतिशब्द का लक्षण क्या है?
2. वृत्ति शब्द का दूसरा नाम क्या है?
3. वृत्ति कितने प्रकार की है?
4. वृत्तियाँ के नाम क्या हैं?
5. वृत्ति का लक्षण क्या है?
6. अभिधा शब्द की व्युत्पति लिखिए।
7. अभिधवृत्ति का लक्षण लिखें।
8. दर्पणकार के मत में अभिधवृत्ति का लक्षण लिखिए।
9. संकेत क्या है?
10. अभिधवृत्ति से क्या प्रतिपाद्य होता है?

22.5 लक्षणा वृत्ति

आलंकारिकों ने तीन वृतियां स्वीकार की। उनमें से लक्षणावृत्ति अन्यतम है। मुख्यार्थ का अर्थात् वाच्यार्थ का तात्पर्यानुपति में बाधा होने पर यह वृत्ति प्रवृत होती है। वह लक्षणा रूढ़ि और प्रयोजन दो प्रकार की है। इस पाठ में दर्पणकारपण्डित विश्वनाथ कविराज अपने ग्रन्थों में जैसा लक्षणवृत्ति का प्रतिपादन किया, वैसा ही हम जानेंगे।

22.6 लक्षणा का लक्षण

किसी वाक्य के उच्चारण में सर्वप्रथम अभिधवृत्ति प्रवृत होती है वहां अभिधा से यदि वाक्यर्थ न हो तो मुख्यार्थ से सम्बन्धित का आश्रय लेकर जिस वृत्ति से अर्थावबोध होता है वह वृत्ति लक्षणा है। लक्षण ही लक्षणा है अथवा जिसके द्वारा अर्थ की प्रतीति की जाती है उसे लक्षणा कहते हैं। पण्डित कविराज विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में कहा है-

मुख्यार्थ बाधे तद्युक्तो ययान्योऽर्थः प्रतीयते।
रूढेः प्रयोजनाद्वाऽसौ लक्षणा शक्तिरर्पिता।।

उक्त लक्षण में उक्तशब्द के तात्पयार्थ की अनुपपत्ति होती है। मुख्यार्थ या अभिधेयार्थ के तात्पयार्थनपुपत्ति में रुढि अर्थात् प्रसिद्धवशाता या प्रयोजन अर्थात् उद्देश्य विशेष से जिस वृत्ति से मुख्यार्थ से सम्बद्ध अन्यार्थ की प्रतीति होती है वह शब्द की आरोपित वृत्ति लक्षणा है। अर्थात् जब मुख्यार्थ के असंगत होने पर उससे सम्बन्धित अन्य अर्थ रूढि या प्रयोजन के कारण जिस शक्ति द्वारा लक्षित होता है, वह अर्पिता आरोपित या कल्पित शक्ति लक्षणा कही जाती है। ''यया अन्योऽर्थः प्रतीयतेऽसौ लक्षणा'' यह लक्षण का लक्षण है।

22.6.1 प्रयोजनवती लक्षणा

गंगायां घोषः इस उदाहरण में सर्वप्रथम अभिधवृत्ति प्रवृत होती है गंगा शब्द का अभिधा से जल प्रवाह यह अर्थ प्राप्त होता है। इससे इस वाक्य का अर्थ होता है कि गंगाजल प्रवाह में घोष है इस जल में तो केवल मछली आदि रहती है। मनुष्य नहीं यह अभिधा प्राप्त अर्थ का बोध होता है। अतः इस वाक्य से अर्थबोध नहीं होता। इसलिए यहां इस वृत्ति से मुख्यार्थ सम्बन्ध का ग्रहण होता है। गंगायां घोषः इसमें गंगा के समीप आदि सम्बन्ध से युक्त गंगा के किनारे यह अर्थ लक्षणावृत्ति से स्वीकार किया जाता है, इस लक्षणा से मुख्यार्थ का बोध होने पर गंगा के समीप आदि सम्बन्ध से युक्त गंगा के किनारे यह अर्थ लक्षणावृत्ति से स्वीकार किया जाता है, इस लक्षणा से मुख्यार्थ का बोध होने पर गंगा के किनारे घोष है यह मुख्यार्थ से भिन्न अर्थ प्रतीत होता है। इस लक्षणा के फल की प्रवृत्ति में रूढ़ि या प्रयोजन कहा जाता है। गंगायां घोषः इस उदाहरण में गंगा किनारे घोष रहते हैं इस अर्थ में गंगा के धर्म घोष में अर्थ से आभीरबस्ती का आरोप किया जाता है। उससे गंगा के शैत्यपावनत्वादि रूप धर्म आभीरपल्ली है यह प्रतीति होती है। इससे यहां घोषों के निवास स्थान शीतत्व पावनत्व आदि धर्मो का प्रयोजन फलित होता है। अतः यहा प्रयोजनवती लक्षणा है।

इसका अन्य उदाहरण सिंहो माणवक यहाँ माणवक चतुष्पाद् विशेष सिंह नहीं होता है। सिंह शब्द मुख्यार्थ का बोध है। शौर्यादि, तीक्ष्णादि धर्मो के सादृश्य सम्बन्ध आश्रित लक्षणावृत्ति से सिंह सदृश माणवक अर्थ का बोध होता है। यहां तीक्ष्णत्वादि धर्म प्रयोजन है।

22.6.2 रुढ़िमूला लक्षणा

'कलिंग साहसिकः' इस उदाहरण में रूढि के कारण लक्षणा प्रवृत होती है। कलिंग शब्द में अभिधवृत्ति से देश विशेष का बोध होता है। इस अभिधा से कलिंग नामक देश साहसिक अर्थ की प्रतीति होती है। क्योंकि साहसिकत्व वीरत्व आदि धर्म अचेतन देश में नहीं हो सकते। अचेतन वस्तु में चेतन धर्म स्थापित करने के लिए प्रभावित हो,

टिप्पणी

उपलक्षणा होने से चेतन से चैतन्य धर्म होते है। इसलिए देश साहसिक आदि धर्मो से युक्त नहीं होता अत: यहा मुख्यार्थ का बोध होता है। इस मुख्यार्थ के बोध होने पर कंलिग देश में लक्षणा प्रवृत होती है। उस लक्षणा से उस देश संयुक्त कंलिगजना लक्षित होता है। क्योंकि देश ग्रहण के संयोग सम्बन्ध से उस स्थान का ग्रहण किया जाता है।

उससे कंलिग देशवासी साहसिक है यह लक्ष्यार्थ प्रतीत होता है देशग्रहण रूढि, की प्रवृत्ति बोध होती है। उससे यहां रूढिवश ही इस अर्थ की प्रतीति हुई अत: यहां रूढिमूला लक्षणा है।

साहित्यदर्पणकार ने अपने ग्रन्थ में एक शंका उठाई कि काव्यप्रकाशकार ने 'कर्मणिकुशल' में रूढि कहाँ है। जैसा कि कुशल शब्द का अभिधा से कुशान् लाति यह अर्थ आता है। उस अर्थ के समान मुख्यार्थ प्रकृति का बोध होने से दक्षरूपार्थ लक्षणा से बोध होता है। विश्वनाथ ऐसा नहीं मानते क्योंकि कुशाओं को लाने वाला रूप अर्थ के व्युत्पत्ति से प्राप्य होने पर भी दक्ष रूप अर्थ ही मुख्यार्थ होता है। निश्चय ही शब्द की व्युत्पत्ति का निमित्त और ही होता है एवं प्रवृत्ति का निमित्त अलग ही होता है।

22.6.3 काव्यप्रकाशकार का मत

काव्यप्रकाशकार मम्मटाचार्य ने अपने ग्रन्थ में लक्षणा का स्वरूप प्रकाशित किया है उसका लक्षण है–

मुख्यार्थबाधे तद्योगे रूढितोऽथ प्रयोजनात्।
अन्याऽर्थो लक्ष्यते यत्सा लक्षणारोपिता क्रिया।

रूढि या प्रयोजन से मुख्यार्थ का बाधा होने पर उस मुख्यार्थ के योग से जिस लक्षणा से अन्य अर्थ की प्रतीति होती है वह शब्द आरोपित करना ही लक्षणा है।

पाठगत प्रश्न 22.2

11. दर्पणकार के अनुसार लक्षणा का लक्षण लिखिए।
12. काव्यप्रकाशकार के अनुसार लक्षणा का लक्षण लिखिए।
13. लक्षणा कितने प्रकार की है?
14. काव्यप्रकाशकार कौन हैं?
15. साहित्यदर्पण के रचयिता कौन हैं?
16. लक्षणा किस पर आरोपित वृत्ति है।?

17. किसके बाधा होने पर लक्षणा प्रवृत होती है।

18. लक्षणा से लब्धार्थ को क्या कहते हैं?

22.7 दर्पणकार के मत में लक्षणा के भेद

साहित्यदर्पणकार पण्डित विश्वनाथ कविराज ने अपने ग्रन्थ में लक्षणा के सोलह (षोडश) मुख्य भेदों का प्रदर्शन किया है। यहाँ हम उसके विषय में जानेंगे। यह लक्षणा दो प्रकार से विभाजित है–उपादानलक्षणा और लक्षण लक्षणा।

22.7.1 उपादानलक्षणा

यह प्रतिपाद्य लक्षणा मुख्यार्थ और लक्ष्यार्थ दोनों की उपादान होने से उपादान लक्षणा है। इसके रूढि एवं प्रयोजन में दो भेद प्राप्त होते है। जैसे कि साहित्यदर्पण में कहा गया है–

मुख्यार्थस्येतराक्षेप वाक्यार्थेऽन्वयसिद्धये।
स्यादात्मानोऽप्युपादानादेषोपादानलक्षणा।।

वाक्य से प्रतिपाद्य अर्थ में अन्वय की सिद्धि के लिए मुख्यार्थ का दूसरे अर्थ में अन्वय की सिद्धि के लिए मुख्यार्थ का दूसरे अर्थ में आक्षेप एवं अपने अर्थ का भी ग्रहण जिस लक्षणा से किया जाता है वह उपादान लक्षणा कही जाती है। ''रूढि में उपादान लक्षणा का उदाहरण–श्वेत: धावति'' सफेद दौडता है। यहां रूप क्रिया में कर्ता द्वारा व्यापार के आश्रय के रुप में मात्र अपने से अन्वय न हो पाने वाले श्वेत से इसकी सिद्धि के लिए अपने से सम्बन्धित अश्व का आक्षेप किया जाता है।

प्रयोजन में उपादान लक्षणा का उदाहरण–कुन्ता प्रविशन्ति, कुन्त शब्द का वस्तु अर्थ अभिधा से प्राप्त है। कुन्तादि के अचेतन होने के कारण प्रवेश करना रूप क्रियाओं में कर्तापन होने से वाक्यार्थ अन्वय को प्राप्त करते हुए के द्वारा इसकी सिद्धि के लिए स्वयं से सम्बद्ध पुरूषादि का आक्षेप किया जाता है। कुन्तादि का अत्यन्त तीक्ष्णता प्रयोजन है और इनमे स्वयं मुख्यार्थ का भी ग्रहण किया जाता है अत: प्रयोजन में उपादान लक्षणा है।

यह उपादान लक्षणा सारोपा और साध्यवसाना भेद से दो प्रकार की है सारोपा उपादान लक्षणा और साध्यावसाना उपादान लक्षणा। अत: कहा गया है–

विषयस्यानिगीर्णस्यान्यतादात्म्यप्रतीतिकृत्।
सारोपास्यान्निगीर्णस्य मता साध्यवसानिका।।

विषयी लक्ष्यार्थ के द्वारा अनाच्छादित अर्थात् अतिरस्कृत मुख्यार्थ का उसी लक्ष्यार्थ के

टिप्पणी

साथ तादाम्य (अभेद) की प्रतीति कराने वाली लक्षणा सारोपा होती है। यही रूपक अलंकार का बीज है। रूढ़ि में उपादान लक्षणा सारोपा जैसे- अश्वः श्वेतः धावति सफेद घोड़ा दौड़ रहा है। यहां मुख्यार्थ श्वेत के इतर अश्व का ग्रहण होता है। यहाँ विषयी अश्व के उच्चारण या उल्लेख से सारोपा उपादान है। क्योंकि श्वेत गुण से युक्त लक्ष्यार्थ के द्वारा अनाच्छादित स्वरुप वाला घोड़ा स्वयं मे समवाय संबंध से स्थित गुण के अभेद से प्रतीत होता है।

प्रयोजन में उपादानसारोपा-एते कुन्ताः प्रविशन्ति, ये भाले प्रवेश कर रहे है। एते सर्वनाम से कुन्तों को धारण करने वाले पुरुषों का निर्देश होने के कारण सारोपा है।

जहां पर विषयी का उच्चारण या उल्लेख नहीं होता है वहां साध्यावसाना होती है साहित्यदर्पण में कहा गया है-

''निगीर्णस्य पुनर्विषयस्तान्यतादात्म्य प्रतीतिकृत्साध्यवसाना''

वह साध्यवसाना उपादान लक्षणा रूढ़ि और प्रयोजन से दो प्रकार की होती है। उनमें रूढ़ि में उपादान लक्षणा साध्यवसाना का उदाहरण- ''श्वेतो धावति'' यहां अश्वरुप विषयी का उच्चारण नहीं होने से साध्यवसाना उपादान लक्षणा है। प्रयोजन में उपादान लक्षणा का साध्यवसाना का उदाहरण- ''कुन्ताः प्रविशन्ति'' यह भी पूर्व के समान विषयी सर्वनाम के ग्रहण का अभाव होने से साध्यवसाना है।

वह उपादान लक्षणा सारोपा शुद्धा और गौणी भेद से दो प्रकार की होती है। साहित्यदर्पण में कहा है-

सादृश्येतरसंबन्धः शुद्धास्ताः सकला अपि।
सादृश्यात्तु मता गौण्यस्तेन षोडशभेदिताः''

उनमें से रूढ़ि में उपादान लक्षणा सारोपा शुद्धा- अश्वः श्वेतो धावति रूढि में ही उपादान लक्षण सारोपा गौणी जैसे- ''एतानि तैलानि हेमन्ते सुखानि'' ये तैल हेमन्त में सुखदायक है। यहां तैलानि पद का मुख्यार्थ है- तिलों का विकार यहां मुख्यार्थ के बाधित होने पर रूढ़ि प्रसिद्धि में सादृश्य सम्बन्ध से तेल का स्नेह चिकनाई अर्थ ग्रहण किया जाता है। साथ ही तेल पद अपना मुख्यार्थ नहीं छोडता। एतानि सर्वनाम से सारोपा होने के कारण रूढ़िवती उपादान लक्षणा सारोपा गौणी है।

रूढि में उपादान लक्षणा साध्यवसाना शुद्धा -जैसे-श्वेतों धावति रुढि में उपादान लक्षणा साध्यवसाना गौणी जैसे -तैलानि हेमन्ते सुखानि प्रयोजन में उपादान लक्षणा सारोपा शुद्धा जैसे - एते कुन्ता प्रविशन्ति

प्रयोजन में उपादान लक्षणा सारोपा गौणी जैसे - एते राजकुमारा गच्छन्ति

प्रयोजन में उपादन लक्षणा साध्यवसाना शुद्धा - जैसे कुन्ताः प्रतिशन्ति

प्रयोजन में उपादन लक्षणा साध्यवसाना गौणी जैसे - राजकुमारा: गच्छन्ति

इस प्रकार उपादान लक्षणा के आठ भेद हैं।

22.8 लक्षण लक्षणा

जिस लक्षणा में मुख्यार्थ अन्य अर्थ का उपलक्षण हो अर्थात् जो अपने मुख्यार्थ को छोड दे उसे जहत्लक्षणा या जहत्स्वार्था भी कहा जाता है। साहित्यदर्पण मे कहा भी गया है-

अर्पणं स्वस्य वाक्यार्थे परस्यान्वसिद्धये।
उपलक्षण हेतुत्वादेषा लक्षण लक्षणा॥

वाक्यार्थ में मुख्यार्थ से भिन्न अर्थ के अन्वयबोध के लिए जहाँ कोई शब्द अपने स्वरुप अर्थ का समर्पण कर दे अर्थात् मुख्य अर्थ को छोड़कर लक्ष्य अर्थ का उपलक्षण बन जाये उस लक्षणा को लक्षण लक्षणा कहा जाता है। वह भी रुढि और प्रयोजन से दो प्रकार की होती है उसमें से रुढ़ि में लक्षण लक्षणा-कलिंग साहसिक:कलिंग पुरुष युद्ध करता है। इस वाक्य में कलिंग देशवासी अर्थ मे प्रसिद्ध है अत: रुढि है, कलिंग पद अपना वाच्यार्थ देश विशेष छोड़ देता है अत: लक्षणा है।

प्रयोजन मे लक्षण लक्षणा -जैसे-गंगायां घोष:- यहां गंगा प्रवाह रुप मुख्यार्थ का ग्रहण नहीं होता अपितु तटरूप अर्थ का बोध होता है। इसलिए यहां लक्षण लक्षणा है लक्षण लक्षणा का उदाहरण -

उपकृतं बहु तत्र किमुच्यते सुजनता प्रथिता भवता परम्।
विदधदीदृशमेव सदा सखे, सुखितमास्स्व तत: शरदां शतम्॥

इस श्लोक में उपकृतम् पद मुख्यार्थ के त्याग से विपरीत लक्षणा द्वारा अपकतम् यह लक्ष्यार्थ बोध होता है अत: यहां लक्षण लक्षणा स्पष्ट होती है।

यह लक्षणलक्षणा भी आरोप और अध्यवसान भेद से दो प्रकार की है। जिस का लक्षण है- ''आरोपाध्यवसानाभ्यां प्रत्येक'' ता ''अपि द्विध।'' रूढि में लक्षण लक्षणा सारोपा-जैसे-कलिंग: पुरुषो युध्यते यहाँ कलिंग और पुरुष का आधार-आधेय भाव सम्बन्ध है। यहां विषयी पुरूष शब्द का उल्लेख होने से सारोपा है।

रुढ़ि में लक्षण लक्षणा साध्यवसाना जैसे- कलिंग: साहसिक: प्रयोजन में लक्षण लक्षणा सारोपा जैसे- आयुधर्श्तम् यहां कार्य-कारण सम्बन्ध है। आयु का कारण घी कार्यकारण भाव सम्बन्ध से सम्बन्धी आयु की अभेद तादाम्य से प्रतीति होती है। आयु के अन्य कारण से विलक्षणता पूर्वक तथा निश्चित रुप से आयुष्करत्व प्रयोजन है।

प्रयोजन में लक्षणलक्षणा साध्यवसान जैसे- आयु: पिबति

टिप्पणी

वह लक्षण लक्षणा सारोपा और साध्यवसाना के प्रत्येक शुद्धा और गौणी दो प्रकार से विभाजित है। जिसका लक्षण–

सादश्श्येतरसम्बन्धः शुद्धास्ताः सकला अपि।
सादश्श्यात्तु मता गौण्यस्तेन षोडशभेदिता।।

रूढ़ि में लक्षणलक्षणा सारोपा शुद्धा –कांलिगः पुरुषो युध्यते।
रूढ़ि में लक्षणलक्षणा सारोपा गौणी –राजा गौडेन्द्रं कण्टकं शोधयति।

राजा गौड नाम के प्रसिद्ध देश का इन्द्रा राजा के रूप मे है।

यहां विषयी गौडेन्द्र पद का उल्लेख होने से सारोपा है।

रूढि में लक्षणलक्षणा साध्यवसाना शुद्धा–कलिंगः साहसिकः।
रूढ़ि में लक्षणलक्षणा साध्यवसाना गौणी –राजा कण्टकं शोधयति।

प्रयोजन में लक्षणलक्षणा सारोपा शुद्धा–आयुर्धृतम्।
प्रयोजन में लक्षणलक्षणा सारोपा शुद्धा गौणी–गौर्वाहीकः ।

यहाँ गौ और वाहिक में अभेद की अनुपपत्ति से मुख्यार्थ वाहीक बैल का बोध हो जाता है। दोनों में मूर्खत्व सामान्य होने से सादृश्य सम्बन्ध बन जाता है। आरोप विषय वाहीक शब्द का निगरण न होने से सारोपा है। वाहिक शब्द का मुख्यार्थ पंजाब लिया जाता है।

प्रयोजन में लक्षण लक्षणा साध्यवसाना शुद्धा–आयुः पिबति
प्रयोजन में लक्षणलक्षणा साध्यवसाना गौणी– गौर्जल्पति

इस प्रकार लक्षणलक्षणा के आठ भेद हुए। उपादान लक्षणा के आठ और लक्षण लक्षणा के आठ भेद किये गये है इस प्रकार लक्षणा 16 प्रकार से पण्डितराज विश्वनाथ ने अपने ग्रन्थ साहित्यदर्पण मे विस्तार से प्रतिपादित किया है।

पाठगत प्रश्न 22.3

19. लक्षणा कितने प्रकार की है?
20. उपादान लक्षणा के कितने भेद हैं?
21. रूढ़ि में उपादान लक्षणा साध्यवसाना शुद्धा का उदाहरण क्या है?
22. प्रयोजन में लक्षण लक्षणा के सारोपा गौणी का उदाहरण क्या है?
23. रूढि में उपादान लक्षणा के सारोपा का गौणी का उदाहरण क्या है?
24. प्रयोजन में उपादान लक्षणा के साध्यवसाना के शुद्धा का उदाहरण क्या है?

25. रूढि में लक्षणलक्षणा के साध्यवसाना का गौणी का उदाहरण क्या है?

26. प्रयोजन में उपादान लक्षणा के साध्यवसाना गौणी का उदाहरण क्या है?

27. रुढि में लक्षणलक्षणा के साध्यवसाना के शुद्धा का उदाहरण क्या है?

28. प्रयोजन में लक्षणलक्षणा के साध्यवसाना शुद्धा का उदाहरण क्या है?

22.9 व्यंजना

आलंकारिक सम्प्रदाय में प्रसिद्ध वृत्तियों में व्यंजनावृत्ति या शब्द व्यापार प्रसिद्ध है। वि उपसर्ग पूर्वक अञ्ज्धतु प्रकाशन अर्थक है। वि उपसर्ग विशेष अर्थ का द्योतक है। इसलिए जिस व्यापार से विशेष रुप अर्थ का प्रकाश होता है वह व्यापार व्यंजना कहलाता है। यह विशेष रुप अर्थ रमणीय सहृदय श्लाघ्य और प्रतीयमान होता है। इसे ही व्यंग्यार्थ कहते है। जैसे मुख्यार्थ की बोधिका अभिधा, लक्ष्यार्थ की बोधिका लक्षणा तथा व्यंग्यार्थ की बोधिका व्यञ्जना होती है। साहित्यदर्पण में कहा गया है-

वाच्योऽर्थोऽभिधया बोध्यो लक्ष्यो लक्षणया मतः।
व्यंग्यो व्यंजनया ताः स्युस्तिस्रः शब्दस्य शक्तयः॥

जैसे अंगनाओं में अवयवादि के अतिरिक्त कुछ अन्य ही लावण्य सहृदयों के नयनों में अमृत के समान होता है। उसी प्रकार वाणी में वाच्यार्थ से भिन्न कुछ अन्य व्यंग्यार्थ होता है। आनन्दवर्धन ने ध्वन्यालोक के प्रथम उद्योत में कहा है-

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।
यत्यत्प्रसिद्धावयवतिरिक्तं विभाति लावण्यमिवांगनासु॥

यह व्यंग्यार्थ व्यंजना वृत्ति से बोध होता है। व्यंजना की परिभाषा आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण ने इस प्रकार दी है।

विरतास्वभिधद्यासु ययाऽर्थो बोध्यते परः।
सा वृत्तिर्व्यंजना नाम शब्दस्यार्थादिकस्य च॥

अर्थः- अभिधा लक्षणा और तात्पर्य ये तीन वृत्तियां है जब ये अपने अपने अर्थ का बोध कराकर क्षीणशक्ति होती है तब जिस वृत्ति से वाच्य लक्ष्यार्थ की अपेक्षा से किसी भिन्न अर्थ का बोध होता है वह वृत्ति व्यंजना कहलाती है। यह व्यंजना शब्दनिष्ठ, अर्थनिष्ठ, प्रकृतिनिष्ठ, प्रत्ययनिष्ठ और निपातनिष्ठ आदि होती है।

जैसे गतोऽस्तम् अर्कः यह एक वाक्य है। यहां अभिधावृत्ति से सूर्य अस्त हो गया यह अर्थ होता है। परन्तु प्रकरण भेद से व्यंजना द्वारा अनेक व्यंग्यार्थो का बोध होता है। जैसे खेलते हुए बालकों प्रति पिता की उक्ति होने पर बालकःगच्छ गच्छ यह व्यंग्यार्थ

को ग्रहण करके घर जाते हैं। इसी प्रकार अभिसारिका के प्रति यह कथन हो तो अभिसरण करो, यह व्यंग्यार्थ है। ब्रह्मचारी के प्रति यह कथन हो तो सन्धयावन्दन करो, यह व्यंग्यार्थ है। गोपालक के प्रति यह कथन हो तो गायों को बाडे में ले चलो इत्यादि प्रकरण भेद से व्यंग्यार्थो का एक ही वाक्य से बोध होता है।

प्रसिद्ध साहित्यिक जयदेव चन्द्रालोक के सातवें मयूख मे व्यंजना का स्वरुप इस प्रकार कहते है।

वृत्ति भेदै स्त्रिभिर्युक्ता स्त्रोतोभिरिव जाह्नवी।
भारती भाति गम्भीरा कुटिला सरला क्वचित्।।

गम्भीर कुटिल और सरल तीन प्रकार के प्रवाहों से गंगा शोभित होती है उसी प्रकार तीन प्रकार की वृत्तियों से युक्त वाणी भी गम्भीर कुटिल और सरल होती है। यहां गम्भीर पद से व्यंजना, कुटिलपद से लक्षणा और सरलपद से अभिधा स्वीकार की गयी है। व्यंजना गम्भीर होती है इसका तात्पर्य है कि जैसे वाच्यार्थ स्पष्टतया से प्रतीत होता है व्यंग्यार्थ उतना स्पष्टता से नहीं कहा जाता है। जैसे गम्भीर पुरुष के मनोभाव सभी सरलता से नहीं समझ सकते वैसे ही व्यंग्यार्थ का ज्ञान भी साधारण जनों को न होकर सहृदय जनों को ही होता है अत: इसके समान गम्भीर व्यंग्यार्थ की बोधिका व्यंजना भी गम्भीर होती है।

आशाधरभट्ट ने भी अभिधा का गंगा नदी के साथ, लक्षणा का यमुना नदी के साथ और व्यंजना का सरस्वती नदी के साथ समानता कहकर वाणी को त्रिवेणी के रूप में प्रदर्शित करते हैं। जैसे सरस्वती भूमि के अन्दर स्थित होने से लोगों को दृष्टिगोचर नहीं होती उसी प्रकार व्यंजना भी साधारण जनों के लिए अगोचर और सहृदय जनों गम्य होती है। इस व्यंजना को निपुणता से ही समझा जाता है। जैसा कि प्रसिद्ध उक्ति है–

शक्तिं भजन्ति सरला लक्षणां चतुरा जना:।
व्यंजना नर्ममर्मज्ञा: कवय: कमना जना:।।

22.9.1

व्यंजना के भेद

व्यंजना के अनेक भेद हैं। विश्वनाथ कविराज ने साहित्यदर्पण के द्वितीय परिच्छेद में निरुपण किया है उनके मत मे व्यंजना के प्रधान रुप से दो भेद है–शाब्दीमूला और आर्थीमूला।

1 शाब्दीमूलाव्यंजना–शाब्दीमूला व्यंजना पुन: दो प्रकार की है अभिधामूला एवं लक्षणामूला। **अभिधामूला व्यंजना** – अभिधामूला व्यंजना का लक्षण साहित्यदर्पण में प्रतिपादित किया है– अनेकार्थस्य शब्दस्य संयोगाद्यैर्नियन्त्रिते।

टिप्पणी

एकत्रार्थऽन्यधी हेतु र्व्यंजना साऽभिधाश्रया॥

एक शब्द के अनेक अर्थ होते है, यदि संयोगादि से एक अर्थ में अभिधा से नियन्त्रित होकर जो शब्द के अन्यार्थबोध में कारणभूत वृत्ति है वह अभिधमूला व्यंजना होती है। उदाहरण– दुर्गालंघितविग्रहो मनसिजं संम्मीलयंस्तेजसा,

प्रोद्यद्राजकलो गृहीतगरिमा विष्वग्वृतो भोगिभिः।
नक्षत्रेशकृतेक्षणो गिरिगुरौ गाढां रूचि धारयन्,
गामाक्रम्य विभूतिभूषिततनू राजत्यूमावल्लभः॥

अर्थः– यह श्लोक उमानाम की महारानी के पति भानुदेव की स्तुति परक है। अतः प्रकरणवश अभिधवृत्ति से यह श्लोक भानुदेव का ही प्रशंसा बोधक है परन्तु यहां कवि द्वारा शब्द सन्निवेश ऐसा किया गया कि उमापति महादेव का भी बोध होता है। अन्त में महादेव और भानुदेव के मध्य में उपमान–उपमेय भाव ध्वनित होता है। अभिधार्थ है– दुर्गो से अलंघित विग्रहवाले, स्वसौन्दर्य से कामदेव के विजेता, राजकला से सम्पन्न, लब्ध गौरववाले, विषयोपभोगकर्ताओं के द्वारा घिरे हुए, क्षत्रिय राजाओं की भी उपेक्षा करने वाले, शिव में दृढ़ आस्था को धारण करने वाले, पृथ्वी को जीतकर ऐश्वर्य से सुशोभित शरीरवाले उमा नामक महारानी के प्रिय (भानुदेव) सुशोभित हो रहे है यह वाच्यार्थ है।

परन्तु इस श्लोक का दुर्गालंघितविग्रह, सम्मीलयन, राजकमल भोगि, नक्षत्रेश, गिरिगुरु, गाम्, विभूति और उमा आदि पदों से शंकर स्तुति परक अर्थ भी बोध होता है। व्यंजना से अर्थ है– दुर्गा पार्वती के आलिंगन से आक्रान्त देहवाले, स्वतेज से कामदेव को भस्म करने वाले, चन्द्रकला से सुशोभित मस्तक वाले, जगद्गुरुत्व को प्राप्त करने वाले, सर्पो से व्याप्त शरीरवाले, चन्द्रमा को नेत्र बनाने वाले, हिमालय रूप श्वसुर मान्यजन से दृढ अभिलाषा वाले, वृषभ पर आरुढ होकर भस्म से अलंकृत शरीर वाले उमा गौरी के प्रिय शिव सुशोभित है।

यहां प्रकरण से नियन्त्रित होने पर अभिधवृत्ति द्वारा उमावल्लभ शब्द का उमा नामक महादेवी का उसके प्रियतम भानुदेव रूप अर्थ वाच्य में नियन्त्रित होने पर गौरीवल्लभ रूप अर्थ शिव व्यंजनावृत्ति द्वारा ही ज्ञात होता है अतः यहां अभिधमूला व्यंजना है।

लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना – लक्षणामूला शाब्दीव्यंजना का लक्षण साहित्य दर्पण में–

लक्षणोपास्यते यस्यकृते तत्तु प्रयोजनम्।
यया प्रत्याय्यते सा स्याद्व्यंजना लक्षणाश्रया॥

अर्थः– जिस प्रयोजन के लिए लक्षणा प्रयुक्त होती है वह प्रयोजन जिस वृत्ति द्वारा अभिव्यक्त होता है वह लक्षणामूला शब्दी व्यंजना होती है।

उदाहरण- गंगायां घोषः - यहां शीतत्व और पावनत्व का अतिशय प्रयोजन है। वह प्रयोजन व्यंजना वृत्ति से सिद्ध होता है। जल प्रवाह आदि अर्थ के बोधन के बाद अभिधावृत्ति तथा तट आदि अर्थ बतलाने पर लक्षणा वृत्ति के विरत होने पर जिस वृत्ति से शीतलता और पावनतादि का अतिशय लाया जाता है वह लक्षणा मूला व्यंजना है।

आर्थीव्यंजना - वक्ता, बोद्धव्य (श्रोता) वाक्य, प्रकरण, देश, काल, काक चेष्टा आदि के वैशिष्ट्य से जो वाच्यादि से भिन्न व्यंग्यार्थ को अभिव्यक्त करे वह वृत्ति आर्थीव्यंजना होती है। साहित्यदर्पण में कहा है- वक्तृबोद्धव्यवाक्यानामन्यसंनिधिवाच्ययोः

प्रस्ताव देश कालाना काकोश्चेष्टादिकस्य च।
वैशिष्ट्यादन्यमर्थं या बोधयेत्साऽर्थ सम्भवा॥

उदाहरण- कालो मधुः कुपित एष च पुष्पधन्वा धीरा वहन्ति रति खेदहराः समीराः।
केलीवनीयमपि वंजुलकुंजमंजुर्दूरे पतिः कथय किं करणीयमद्य॥

अर्थ- समय बसन्त ऋतु का है कामदेव अत्यन्त कुपित हैं, मन्द-मन्द और रति की थकान का हरण करने वाली हवाएँ बह रही हैं यह सामने स्थित अशोक के वृक्षों से सुन्दर बना छोटा सा क्रीडास्थल है पति दूर देश में है, ऐसे अवसर पर क्या करना चाहिए? यह तू ही बता।

यहां वक्त्री नायिका के मदन विह्वलत्वादि वैशिष्ट्य के योग से तुम इस स्थान पर अविलम्ब प्रच्छन्न कामुक को भेजो- यह अर्थ व्यंजित है। यहां एक उदाहरण मात्र दिखाया गया है अन्य उदाहरण साहित्यदर्पण आदि ग्रन्थों में खोजे जा सकते हैं।

यह आर्थी व्यंजना पुनः अर्थ के वाच्य लक्ष्य और व्यंग्य रूप से त्रिविधता से कहे गये प्रत्येक के मध्य में एक एक त्रिविध प्रकार है इस प्रकार आर्थी व्यंजना असंख्य प्रकार की है।

शंका - शाब्दी व्यंजना में अर्थ की, आर्थी व्यंजना में शब्द की उपयोगिता है अतः किसलिए उन दोनों का पृथक्ता से निर्देश किया। इसके विषय में कहते हैं कि शब्द व्यंजकता में भी अन्य अर्थ की अपेक्षा करता है और अर्थ भी शब्द की उसी प्रकार अपेक्षा करता है। इस कारण एक की व्यंजकता में दूसरे की साहकारिता अवश्य माननी चाहिये।

यह व्यंजना प्रकृति, प्रत्यय, उपसर्ग निपात-वर्ण रचनादि में भी होती है **जैसै**-

चपलांगां दृष्टिं स्पशसि बहुशो वेपथुमतीं, रहस्याख्यायीव स्वनसि मृदु कर्णान्तिकचरः।
करं व्याधुन्वत्याः पिबसि रतिसर्वस्वमधरं, वयंतत्वान्वेषान्मधुकर, हतास्त्वं खलु कृती॥

यह उक्ति अभिज्ञानशाकुन्ल में शकुन्तला को व्याकुल करते हुए भ्रमर के प्रति दुष्यन्त

की है। इस श्लोक में हता: शब्द प्रयुक्त हुआ है न कि दुख को प्राप्त हुआ। हता: शब्द के प्रयोग से ही दु:खातिशय रूप व्यंग्यार्थ की प्रतीति होती है। यहां हन् धातुरुप या प्रकृति में ही वहा व्यंजना है। इसी प्रकार अन्य उदाहरणों मे भी व्यंजना जाननी चाहिए।

व्यंजनासिद्धि - व्यंजना अभिधा लक्षणा आदि सम्पूर्ण वृतियों से भिन्न कवि आलंकारिक सम्प्रादय प्रसिद्ध अभिनव वृत्ति है। यह व्यंजना रस रसामास-भाव-भावाभासादि के बोध के लिए अवश्य ही आलंकारिको द्वारा स्वीकृत है। इस वृत्ति का सर्वप्रथम आनन्दवर्धनाचार्य द्वारा ध्वन्यालोक में प्रतिपादित किया है। जैसा कि ईश्वर संकेत से शब्द में स्थित स्वाभाविक वृत्ति अभिधा होती है। यह अभिधा शब्द के वाच्यार्थ को ही कहती है। लक्षणा तो प्रयोजनादि के निमित्त से मुख्यार्थ बोध के उत्पाद्य वक्ता द्वारा शब्द पर समारोपित कृत्रिम वृति है। व्यंजना तो प्रकरण वक्ता बोद्धत्यादि के निमित्त आश्रित होकर समुन्मीलित वृत्ति है।

शब्द बुद्धि कर्मो का विराम करके व्यापार का अभाव होता है यह नियम है। यदि शब्द बुद्धि और कर्म का व्यापार समाप्त होता है तो पुन: उसका व्यापार नहीं होता है। जैसे- ''देवदत्त: ग्रामं गच्छति'' यहाँ अभिधा वृत्ति से सर्वप्रथम सभी पदों का पृथक-पृथक अर्थ बोध होता है। उसके बाद वाच्यार्थ को कहकर अभिधा विरत होती है। उसके बाद तात्पर्य वृत्ति से कर्ता कर्मत्व आदि रूप से सभी का अन्वय होने पर एक वाक्यार्थ सम्पादित होता है। यदि तात्पर्य अनुपपत्ति हो तो लक्षणा स्वीकार की जाती है। जैसे गंगायां घोष: में अभिधा वृत्ति से गंगाशब्द से जलप्रवाह रूप अर्थ का बोध होता है। घोष शब्द से आभीर पल्ली रुप अर्थ का बोध होता है। इस प्रकार मुख्यार्थ ज्ञात होने पर तात्पर्य की अनुपपत्ति होती है। जल प्रवाह में आभीर पल्ली का अवस्थान कभी संभव नहीं के कारण से। अत: लक्षणा वृत्ति गंगापद सामीप्य सम्बन्ध से स्वसम्बन्धि तटरूप अर्थ का बोध करता है। उसके बाद लक्षणा से गंगा के किनारे घोष है यह अर्थ होता है। इस प्रकार अभिधा तात्पर्य लक्षणा तीन शक्तियों का अपने अपने अर्थ बोध से विरत हो जाने पर रसादि का बोध कराने के लिए तुरीय कोई वृत्ति अवश्य स्वीकार करनी चाहिए।

अभिधा व्यंग्यार्थ बोधिका नहीं है- अभिधा संकेतितार्थ बोध कराकर विरत होती है। अत: उसका रसादिव्यंग्यार्थ बोधन मे पुन: सामर्थ्य नहीं है। यहां कुछ लोग आक्षेप करते हैं कि यह तो दीर्घ दीर्घतर अभिधा का ही व्यापार है। इसका तात्पर्य है किसी बलवान सैनिक द्वारा प्रेरित एक बाण के समान जो एक ही वेग व्यापार से शत्रु के वर्मच्छेद, मर्मभेद और प्राण हरण को धारण करता है। वैसे ही सुकवि द्वारा प्रयुक्त एक ही शब्द एक ही अभिधा व्यापार से पदार्थो परिस्थिति अन्वयबोध और व्यंग्यार्थ प्रतीति को धारण करता है अत: व्यंग्य अर्थ उनके मत में वाच्य ही है। और विवक्षितार्थ बोधकराकर ही अभिधा विरत होती है न कि उससे पूर्व में। अत: कुछ के मत में व्यञ्जना स्वीकार्य नहीं है।

यहां समाधान है कि शब्द बुद्धि कर्मो का विराम करके व्यापार का अभाव होता है अर्थात् वाचक शब्द का सुकृत् शब्द बोध को उत्पादन करके पुनः अभिधा दूसरे अर्थ बोधन में असमर्थ होती है। भाव यह है कि संकेतितार्थ ही बोध कराकर अभिधा विरत है पुनः अर्थान्तर को प्रकाशित नहीं करती है।

तात्यर्यवृत्ति व्यंग्य बोधिका नहीं- दशरूपक के कर्ता धनिक के मत में व्यंजना का तात्पर्यवृत्ति में ही अन्तर्भाव होता है। तात्पर्यवृत्ति प्रतिपाद्य ही व्यंग्य है। निश्चय ही तात्पर्याख्या वृत्ति पदों के सम्बन्ध मात्र बोधन से उपक्षीण होती है। अतः वह कैसे व्यंग्यार्थो को बोध कराये, अथवा कैसे अतिरिक्त स्वरूप व्यंजना उसके अन्तर्गत होती है। यदि उनके द्वारा कहा जाय तात्पर्य हि यावत्कार्यप्रसारि होती है। अर्थात् धनिक के मत में तात्पर्यवृत्ति की सीमा निर्धारित नहीं है। अतः वह वृत्ति अधिक व्यंग्यादि का भी बोध करती है इसे मानना चाहिए। अतः व्यंजना स्वीकार नहीं करनी चाहिए। यदि यहां भी शब्द बुद्धि कर्म का विराम करके व्यापार का अभाव ही समाधान है। जैसा कि तात्पर्यवृत्ति वाक्यघटकपदों का संसर्गमात्र को पैदा करके सामर्थ्य नष्ट होती हुई व्यंग्यार्थ उत्पादन करने में समर्थ नहीं है।

यदि शब्द बुद्धि कर्मो का विराम करके व्यापार का अभाव है यह किसी राजाज्ञा के समान न्याय स्वीकार नहीं करते है। यह न्याय मीमांसक मत मात्र है। अतः यह अप्रमाणिक न्याय सभी द्वारा अभ्युपगन्तव्य नहीं है। यदि यहां कहा जाता है कि दीर्घ दीर्घतर अभिधा व्यापार से अभीष्ट अर्थ की सिद्धि संभव है तब लक्षणा स्वीकृत नहीं होती है। ब्राह्मण कन्या ते गर्भिणी इस वाक्य के श्रवण के बाद अविवाहित कन्या को पुत्रोत्पत्ति की वार्ता को सुनने से शोक होता है, पुत्रस्ते ज्ञातः इस वाक्य को सुनने से ब्राह्मण को हर्ष उत्पन्न होता है। इस प्रकार हर्ष शोकादि की प्रतीति हर्षशोकादिबोधक मुख्य प्रसादमालिन्यादि अनुमान से प्रतीत होते हैं। परन्तु अभिधा दीर्घ से दीर्घतर व्यापारात्यिका यह स्वीकार करने में हर्ष शोकादि भी वाच्यत्व को स्वीकार करनी चाहिए। परन्तु हर्ष शोकादि भावना के वाच्यत्व वाच्यत्व को किसी के द्वारा भी स्वीकृत नहीं है। इस प्रकार यह दीर्घ से दीर्घ अभिधा व्यापार न्याय स्वीकार नहीं है।

लक्षणा व्यंग्यार्थबोधिका नहीं - शब्द बुद्धि कर्मो के विराम करके व्यापार का अभाव है इस नियम से गंगायां घोषः में लक्षणा तटादि अर्थ मात्र को बोध कराकर विरत से होती है तो पुनः शीतलता पावनता आदि व्यंग्यार्थ बोधान में पुनः समर्थ नहीं होती। अतः व्यंजनात्मिका चतुर्थवृत्ति अवश्य स्वीकार करनी चाहिए।

22.9.2 व्यंजनावृत्ति का महत्त्व

व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ से सर्वथा भिन्न ही होता है। नीचे ध्वन्यालोकग्रन्थ में निरूपित कुछ श्लोक उदाहरण के रूप में उपस्थापित किये है-

टिप्पणी

1. कभी तो वाच्यार्थ में विधिरूप होने पर भी व्यंग्यार्थ प्रतिषेध रुप होता है।-

भ्रम धार्मिक विश्रब्धः स शुनकोऽद्य मारितस्तेन।
गोदानदीकच्छकुंजवासिना दृप्तसिंहेन॥

यह श्लोक हालकवि कृत गाथासप्तशती के द्वितीय शतक में है गोदावरी नदी का तट किसी पुंश्चली नायिका का संकेतस्थल है, जहाँ कि वह अपने प्रेमी से मिलने के लिए जाया करती है। उस स्थल की मनोरमता के कारण एक धार्मिक पण्डित वहाँ सन्धयोपसना या भ्रमण के लिए आने लगा और पुष्पादि तोड़ने लगा। इससे उस पुंश्चली नायिका के प्रेम मिलन में विघ्न उत्पन्न होने लगा और वह चाहने लगी कि वह धार्मिक यहां न आये। उस स्थान पर एक कुत्ता रहता था, जिससे वह धार्मिक दु:खी था अत: उस नायिका ने धार्मिक पुरुष से कहा-अब उस कुत्ते को गोदावरी नदी के किनारे कुंज में रहने वाले मदमत्त सिंह ने मार डाला है। अत: आप यहां निश्चित होकर भ्रमण करो। अब तक आप कुत्ते से डरते थे अब तो साक्षात् मदमत्त सिंह उपस्थित है। यदि अब भी भ्रमण करोगे तो मारे जाओगे अत: यहां मा भ्रम अर्थात् यहां भ्रमण मत करो यह व्यंजना है। वस्तुत: यहां अभिधा वृत्ति से भ्रम करो यह विधि बोध होता है परन्तु व्यंजना से मत भ्रमण करो यह निषेध व्यक्त होता है।

2. कहीं वाच्यार्थ के निषेधरूप होने पर व्यंग्य अर्थ विधि रूप होता है जैसे:-

श्वश्रूरत्र निमज्जति अत्राहं दिवसकं प्रलोकय।
मा पथिक रात्र्यन्ध शय्यायां मम निमक्ष्यसि॥

यह हालकवि कृत गाथासप्तशती के सप्तम शतक के 63वां पद्य है। पूर्व रात्रि में सुरत के लिए अपने भ्रमण से एक प्रगाढ शयनधरिणीश्वश्रू को आधार कर के अनर्थविधायी प्रेषित राय्यन्धत्व रुप से परिचायित स्वरूप उपपति के प्रति स्वयं दूती कुलटा की उक्ति है। यहाँ इस शय्या के पास श्वश्रूजरावस्था के कारण प्रगाढ़ निद्रा में सोती है अत: उससे किंचित शंका नहीं करनी चाहिए यह आशय है, और यहां पास में मैं सोती हूँ। यहां स्वापबोधकपद का प्रयोग न होने से कुलटा की काम पीड़ा निद्रा राहित्य को द्योतक है। हे प्रवासी पथिक मेरी शय्या पर मत गिर जाना। पास में परिवर्तन होने से इधर-उधर न लुढ़क जाना। यहां मेरी शय्या पर मत गिरना यह निषेध रूप वाच्यार्थ है परन्तु मेरी ही शय्या पर गिरना है यह विधि रूप व्यंग्यार्थ है।

3. कही पर व्यंग्यार्थ वाच्य अर्थ से भिन्न विषय में व्यवस्थित हो सकता है। जैसे-

कस्या वा न भवति रोषो दृञ्ट्वा प्रियायाः सव्रणमधरम्।
सभ्रमर पद्मध्राणशीले वारित वामे सहस्वेदानीम्॥

अपनी पत्नी का उपपति द्वारा दंशित अधर को देखकर रूष्ट हुए पति में निरपराध बोध के लिए प्रेरित करती हुए सखी की उक्ति है-अपनी प्रियतमा के व्रण सहित आधार को देखकर किस पति को क्रोध नहीं होता है। अपितु सभी में रोष होता है।

टिप्पणी

इससे इसका कोई दोष नहीं प्रकट नहीं होता है। अरे भ्रमर से युक्त कमल को सुंघने वाली और रोकने पर भी विपरीत आचरण करने वाली अब तू इसको सहन कर। वाच्यार्थ दुराचारिणी के प्रति है कि मैंने इस प्रकार की धृष्टता के लिए तुमको अनेक बार रोका परन्तु तुम नहीं मानी अब फल भोगो, व्यंग्यार्थ नायिका के पति के प्रति है कि तुम्हारी पत्नी का अधर भ्रमर द्वारा दंशित है, किसी पर पुरूष द्वारा नहीं। इस प्रकार वाच्य अर्थ नायिका और व्यंग्यार्थ का विषय पति है। इसलिए दोनों अर्थ भिन्न है।

इस प्रकार वाच्यार्थ से सर्वथा भिन्न व्यंग्यार्थ के प्रतिपादन के लिए व्यंजना नामक वृत्ति अवश्य स्वीकार करनी चाहिए।

पाठगत प्रश्न 22.4

29. व्यंजना का लक्षण लिखिए।

30. व्यंजना मूलतः कितने प्रकार की है?

31. शाब्दीमूला व्यंजना कितने प्रकार की है उनके नाम लिखिए?

32. लक्षणा व्यंग्यार्थ बोधिका है या नहीं है?

33. अभिधा व्यंग्यार्थ बोधिका या नहीं है?

22.10 तात्पर्यवृत्ति

आलंकारिकों के द्वारा मुख्यरूप से तीन ही वृत्तियां स्वीकार की गई है। परन्तु तात्पर्याख्या अन्य वृत्ति होती है ऐसा कुछ विद्वान् मानते हैं। साहित्यदर्पणकार पण्डित विश्वनाथ कविराज अन्य मत को मानते हैं। साहित्यदर्पणकार तात्पर्यवृत्ति को स्वीकार करते हुए क्या कहते है। यह इस प्रकरण में पढ़ेगे।

22.10.1 तात्पर्यवृत्ति का लक्षण

साहित्यदर्पण में अभिधा से प्राप्त अर्थ वाच्यार्थ कहा गया है। यहाँ कुछ संशय उपस्थित करते है- कि अभिधा से इस शब्द से यह अर्थ ज्ञात होता है परन्तु वाक्य में पद समूह से पदों का परस्पर अर्थ का बोध होने पर उन पदों के अन्वय से पूर्व वाक्यार्थ ज्ञान संभव नहीं होता। क्योंकि अभिधवृत्ति पद के अर्थ का प्रतिपादन करके विरत होती है। विरत होने पर पुनः कैसे कार्य होगा। शब्दबुद्धि कर्मो के विरम्य व्यापार अभाव न्याय से बिना रूके अभिधा से पुनः वाक्यार्थ बोध संभव है।

प्रश्न करते हैं कि पदार्थों का ज्ञान होने पर कैसे वाक्यार्थ प्रतीति होती है। तब कहते हैं कि तात्पर्याख्या वृत्ति ही पदार्थों के मध्य अन्वय सम्पादन से पूर्ण वाक्य सिद्ध होता है। इसलिए यह विलक्षण तात्पर्यवृत्ति स्वीकार्य है। तात्पर्यवृत्ति का लक्षण साहित्यदर्पण में कहा है –

तात्पर्याख्यां वृतिमाहुः पदार्थान्वयबोधने।
तात्पर्यर्थं तदर्थं च वाक्यं तद्बोधकं परे।

प्राचीन नैयायिक और भाट्टमीमांसक पदार्थों का अभिधा या लक्षणा द्वारा उपाथित अर्थों के अन्वय बोध होने पर परस्पर यथा संभव संबंध बोध होने पर तात्पयार्थ को तात्पर्याख्या वृत्ति कहा गया है। जैसे- 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधम्' इस उदाहरण में शरीर पर में स्थूलदेह अर्थ प्राप्त होता है, आद्यम् इस पद में प्रथमम् अर्थ प्राप्त होता है, खलु निश्चयार्थक अव्ययपद है, धर्मसाधनम् इस पद का अभिधा से धर्म की प्राप्ति के लिए उपाय यह अर्थ प्राप्त होता है। ऐसा होने पर अर्थ विवेक उत्पन्न नहीं होता। इसलिए यहां तात्पर्य वृत्ति से पदों का अन्वय से एक वाक्यार्थ आता है कि 'शरीरम् एवं धर्मस्य प्राप्तये प्रथमं उपायभूतम्' इस अर्थ की प्राप्ति होती है। इसलिए तात्पयार्थ वृत्ति स्वीकार है।

22.10.2 तात्पर्य वृत्ति को स्वीकार करने वाले सम्प्रदाय

इस वृत्ति को स्वीकार करने के प्रसंग में मीमांसको के मध्य में भी वैषम्य विद्यमान है। दो पक्ष सम्मुख आते है। 1 अन्विताभिधनवादी, 2 अभिहितान्वयवादी।

1 **अन्विताभिधानवाद**–अन्विताभिधानवाद या प्रभाकर गुरू कहते हैं कि जैसा कि इनकी नीति (न्याय में) तात्पर्य वृत्ति का प्रयोजन नहीं है। 'सोऽयमिषोरिव दीर्घदीर्घतरोऽमिधव्यापारः' इस न्याय से अभिधा का उतना कार्य प्रसारित होने उस अभिधावृत्ति द्वारा ही पदार्थ परस्पर अन्वित होकर अभिहित होते हैं। उसके द्वारा ही उन पदार्थों का अन्वय पूर्वक अर्थ प्रतीति में पुनः अन्वय बोध की अपेक्षा नहीं है। उनके मत में शुरू में क्रिया कारक आदि के मध्य में अन्वय बोध हो जाता है। उनके बाद पदविशेषण के साथ व्यवहार में विशेष स्मृति पैदा होती है। जैसा कि अन्वित घट में घट पद की शक्ति है। शब्द बोध में आकांक्षादि के कारण वृत्ति आदि विशेष रूप से आभासित होते हैं। अतः तात्पर्य वृत्ति की अपेक्षा नहीं है।

2 **अभिहितान्वयवादी** – भट्ट अभिहितान्वयवादी कहते हैं कि उनके न्याय में अभिधा से केवल पद का अर्थ प्राप्त होता है न कि पदार्थों के अन्वय बोध में अभिधा समर्थ है। उसका अर्थ प्रतिपादन के बाद विराम हो जाता है। इसलिए अन्वय बोध में तात्पर्य वृत्ति अपेक्षित है। अतः ये तात्पर्य वृत्ति स्वीकार करते हैं।

दर्पणकार का अभिमत – साहित्यदर्पणकार पण्डित विश्वनाथ कविराज भाट्ट अर्थात् अभिहितान्वयवाद के मत को स्वीकार करते हैं। उनके न्याय में पदार्थ बोध नाम क्रिया कारक आदि के मध्य में संबंध तो सत्य है। परन्तु केवल अन्वित में कहाँ से शक्ति

टिप्पणी

है। क्रिया कारक के मध्य में संबंध के समय में अन्वय होता है। वहाँ अन्वय संभव होने से अभिधा प्रवर्तित होती है। अभिधा वैसा अर्थ प्रतिपादन करके विरत होती है। पुनः अन्वय में प्रवर्तित नहीं होती है। तब तात्पर्य वृत्ति से ही वाक्यार्थ बोध होता है। इसलिए तात्पर्यावृत्ति स्वीकार की है।

पाठगत प्रश्न 22.5

34. साहित्यदर्पणस्थ तात्पर्यवृत्ति का लक्षण लिखिए?

35. तात्पर्यवृत्ति के प्रसंग में कहे गये दो पक्षों के नाम लिखिए?

36. दर्पणकार किस मत को स्वीकार करते हैं?

37. अन्विताभिधनवादी कौन हैं?

38. अभिहितान्वयवादी कौन है?

पाठसार

साहित्यशास्त्र मे वृत्ति अत्यन्त प्रसिद्ध विषय है। वृत्तियों के भेद के विषय में विद्वानों में मतभेद है। वे वृत्ति तीन या चार प्रकार की है। अभिधा लक्षणा व्यंजना और तात्पर्य शब्द जिस व्यापार या वृत्ति से लोक प्रसिद्ध अर्थ का बोध कराता है वह व्यापार वृत्ति अभिधा कहलाती है। आचार्य मम्मट ने काव्यप्रकाश में अभिधा का लक्षण निरूपित किया है- स मुख्योऽर्थस्तत्र मुख्यो व्यापारोऽस्याभिधेच्यते। जैसे 'घटमानय' यह वाक्य सुनकर अभिधवृत्ति से घट शब्द का कम्बुग्रीवादिमान् पिण्ड है। क्योंकि इस घट शब्द से कम्बुग्रीवादिमान् पिण्ड इस अर्थ बोध में ईश्वरेच्छा है। इसी प्रकार आनय इसका भी अभिधवृत्ति से आनयन रूप क्रिया को बोध होता है। इस प्रकार मुख्यार्थ प्रतिपादिक वृत्ति की आलोचना के बाद लक्षणा वृत्ति कहते हैं। जब अभिधा से मुख्यार्थ के प्रतिपादित होने पर भी वाच्यार्थ का बोध नहीं होता तब यह लक्षणा वृत्ति प्रवृत होती है। वह मुख्यार्थ के साथ किसी सम्बन्ध से सम्बद्ध होकर भिन्न अर्थ को लक्षित करती है। वह लक्षणा 80 प्रकार की होती है उनमें से 16 षोडश प्रमुख भेद हैं। जिन्हें पण्डित विश्वनाथ कविराज ने साहित्यदर्पण में विस्तार से प्रतिपादित किया है। इस पाठ में उनके अनुसार ही लक्षणा के भेद प्रदर्शित किये हैं। साहित्यशास्त्र में व्यंजना सर्वाधिक प्रसिद्ध वृत्ति है। अभिधा लक्षणा और तात्पर्य ये तीन वृतियाँ जब अपने-अपने अर्थ को बोध कराकर क्षीण हो जाती है तब जिस वृत्ति से वाच्यलक्ष्यार्थ की अपेक्षा किसी अन्य अर्थ का बोध होता है वह व्यंजना वृत्ति है। यह व्यंजना शब्दनिष्ठ, अर्थनिष्ठ, प्रकृतिनिष्ठ, प्रत्ययनिष्ठ और निपातनिष्ठ आदि होती है। आलंकारिकों ने यद्यपि तीन ही वृत्तिया स्वीकार कि हैं फिर भी यह तात्पर्याख्या वृत्ति अवश्य स्वीकार करनी चाहिए यह विश्वनाथ का मत

है। उस का कारण है अभिधवृत्ति से पदों का अर्थ ज्ञात होता है। परन्तु केवल पदो के अर्थ ज्ञात होने से पूर्ण वाक्यार्थ का बोध नहीं होता। इसलिए पूर्ण वाक्यार्थ प्राप्ति के लिए जो वृत्ति अपेक्षित है वह तात्पर्याख्या है। प्रस्तुत पाठ में वृत्ति चतुष्टय की समालोचना निहित है।

आपने क्या सीखा

- वृत्ति के बारे में।
- वृत्तियों के लक्षण।
- शब्दबोध प्रक्रिया।
- अभिधा, लक्षणा व्यञ्जना वृत्तियों को जाना।
- तात्पर्यवृत्ति को जाना।

पाठान्त प्रश्न

1. अभिधवृत्ति के आधार पर लघु निबन्ध लिखिए।
2. वृत्ति को आधार बनाकर लघु प्रबन्ध लिखिए।
3. अभिधवृत्ति के लक्षण का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
4. वृत्तियों के भेद लिखिए।
5. संकेतग्रहण कैसे सम्भव होता है?
6. लक्षणा का वर्णन कीजिए।
7. रूढिमूला प्रयोजनवाली लक्षणा का प्रतिपादन कीजिए।
8. लक्षणा के 16 भेदो का वर्णन कीजिए।
9. उपादान लक्षणा के भेदों की उदाहरण के साथ व्याख्या कीजिए।
10. लक्षणलक्षणा के भेदों को उदाहरण के साथ लिखिए।
11. व्यंजनावृत्ति का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
12. आर्थी व्यंजना का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
13. शाब्दी व्यंजना का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
14. तात्पर्यवृत्ति का सोदाहरण परिचय दीजिए।

टिप्पणी

15. साहित्यदर्पणानुसार तात्पर्यवृत्ति को स्पष्ट कीजिए।
16. तात्पर्यवृत्ति की स्वीकृति में दो पक्षों का उल्लेख कीजिए।
17. साहित्यदर्पणकार के मत को स्पष्ट कीजिए।
18. तात्पर्यवृत्ति क्यों स्वीकार करे सप्रमाण वर्णन कीजिए।
19. अन्विताभिधनवाद का विस्तार से वर्णन कीजिए।
20. अभिहितान्वयवाद का विस्तार से वर्णन कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

22.1

1. परार्थाभिधनवृति।
2. शक्ति।
3. चार भेद।
4. अभिधा लक्षणा व्यंजना और तात्पर्य।
5. अर्थबोध के प्रति अनुकूल कोई व्यापार है वह व्यापार ही वृत्ति है।
6. अभि उपसर्ग पूर्वक धा धातु से अड् प्रत्यय से अभिध शब्द निष्पन्न होता है।
7. 'स मुख्याऽर्थस्तत्र मुख्यो व्यापारोऽस्यामिधेच्यते''।
8. 'तत्र संकेतितार्थस्य वोधनात् अग्रिमाभिध''।
9. इस शब्द से यह अर्थ बोध होता है यह ईश्वरेच्छा संकेत है।
10. वाच्यार्थ।

22.2

11. मुख्यार्थबाधे तद्युक्तो ययान्योऽर्थः प्रतीयते।
    रूढेः प्रयोजना द्वासौ लक्षणा शक्ति रर्पिता।।
12. मुख्यार्थबाधे तद्योगे रूढितोयऽथ प्रयोजनात्।
    अन्योऽर्थो लक्ष्यते यत्सा लक्षणारोपिता क्रिया।।
13. द्विविध।

14. मम्टाचार्य।

15. पण्डित विश्वनाथ कविराज।

16. शब्द के ऊपर।

17. मुख्यार्थ का।

18. लक्ष्यार्थ।

22.3

19. दो प्रकार–उपादान एवं लक्षण लक्षणा।

20. आठ प्रकार की।

21. श्वेतः धवति।

22. गौर्वाहीकः।

23. एतानि तैलानि हेमन्ते सुखानि।

24. कुन्ताः प्रविशन्ति।

25. राजा कण्टक शोधयति।

26. राजकुमाराः गच्छन्ति।

27. कलिंग साहसिकः।

28. आयुः पिबति।

22.4

29. विरतास्वभिधद्यासु ययाडर्यो बोध्यते परः।
    सा वृत्ति व्यंजना नाम शब्दस्यार्थादिकस्य च।।

30. दो प्रकार।

31. दो प्रकार–अभिधमूला और लक्षणामूला।

32. नहीं है।

33. नहीं है।

टिप्पणी

22.5

34. तात्पर्याख्यां वृत्तिमाहुः पदार्थान्वयबोधने

तात्पर्यार्थं तदर्थं च वाक्य तद्बोधकं परे।।

35. अभिहितान्वयवाद पक्ष, और अन्विताभिधनवाद पक्ष।

36. अभिहितान्वयवाद।

37. प्रभाकर।

38. भाट्ट।

23

छन्दसां मात्रागणयतिभेदा

(छन्दों की मात्रा गण यति और भेद)

मन्त्र छन्दबद्ध होता है। केवल यजुर्वेद को छोड़कर तीनों संहिताएं छन्दमय हैं। अत: छन्दों के ज्ञान के बिना वेदमन्त्रों के साधु उच्चारण करने में समर्थ नहीं होते। अत: छ: वेदांगो में छन्द का अन्तर्भाव होता हैं वेदपुरूष के पाद से छन्द की कल्पना की गयी है। जैसा कहा गया – ''छन्द: पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते''। शौनक विरचित ऋक्प्रातिशाख्य के अन्तिम भाग में छन्दों का पर्याप्त विवेचन है। इस छन्दशास्त्र का पिगंलछन्दसूत्र नामक ग्रन्थ विद्यमान है। पिंगलाचार्य ने इस छन्दसूत्र ग्रन्थ की रचना की। इसमें वैदिक और लौकिक छन्दों का विवेचन हैं। छन्दशास्त्र अत्यन्त प्राचीन है। यास्काचार्य विरचित निरुक्तग्रन्थ में और ब्राह्माण ग्रन्थों में छन्द शब्द का अनेक प्रकार से निवर्चन प्रदर्शित है। ऐतरेयारण्यक में कहा गया– ''मानवान् पापकर्मभ्य: छादयन्ति छन्दांसि इति छन्द:''। तैत्तिरीयसंहिता में ''देवा छन्दोभिरात्मानं छादयित्वा उपायन् प्रजापतिरग्निं चिनुत'' कहा गया। व्याकरण के आचार्य महर्षि पाणिनी के मत में तो 'छन्द् धातु से छन्द शब्द की व्युत्पति होती है। इस पाठ में कुछ छन्द संबंधी चर्चा प्रस्तुत है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढकर आप सक्षम होंगे :

- छन्द के सामान्य परिचय व लक्षण को जान पाने में;
- छन्दों के वैशिष्ट्य एवं भेदों को समक्ष पाने में;
- पद्य के लक्षण को जान पाने में;
- वृत्त के लक्षण व भेदों को जान पाने में;

- छन्द लक्षण में प्रयुक्त गण, यति, दण्डक, लघु, गुरू आदि को समझ पाने में;
- छन्द से श्लोक रचना व श्लोक को देखकर छन्द का ज्ञान कर सकेंगे।

23.1 छन्द का लक्षण

'छादयति आच्छादयति वा इति छन्दः। वैयाकरण पाणिनी के मत में तो अभिप्रायर्थबोधक से अथवा आनन्दपर्यायभुक्तार्थ से छदि धतु से छन्द शब्द की उत्पत्ति हुई। जो पाप से आच्छादित करता है वह छन्द है। अर्थात् जो जिस पाप से यजमान और पुरोहित को आच्छादन करता है वह छन्द है। तैत्तिरीय संहिता में छन्द की उत्पत्ति के विषय में एक आख्यायिका उपलब्ध है। प्रजापति ने अग्नि को चुना। उस अग्नि ने भयंकर रूप धरण कर लिया उस अग्नि को धारणकर के प्रजापति देवगण के साथ चले गये। उस भयंकर रूप को देखकर देवों ने भी अग्नि के साथ जाने का साहस नहीं किया। तब देव ने छन्द से शरीर को आच्छदित करके अग्नि के साथ जाकर अक्षतरूप से पुनः आ गये। छन्द से शरीर को आच्छादित किया। अतः छन्द नाम से सुप्रसिद्ध है। ऐतरेयारण्यक में कहते है कि- ''मानवान् पापकर्मेभ्यः छन्दयन्ति छन्दांसि इति छन्दः''। तैत्तिरीयसंहिता में कहा गया-''देवा छन्दोभिरात्मानं छादयित्वा उपायन् प्रजापितिरग्निं चिनुतः''।

23.2 छन्द के प्रकार

छन्द वस्तुत लौकिक और वैदिक भेद से दो प्रकार का होता है

लौकिक छन्द पिंगलादि आचार्यों के मत में मात्र वर्ण भेद से दो प्रकार का होता है। जैसे वृत्तरत्नाकर में कहा गया-

पिंगलादिभिराचार्यैर्यदुक्तं लोकिकं द्विधा।
मात्रवर्णविभेदेन च्छन्दस्तदिह कथ्यते॥

अर्थात् पिंगलाचार्य ने छन्द के दो भेद कहे हैं लौकिक और वैदिक। उनमें भी लौकिक छन्द मात्रा एवं वर्ण भेद से पुन दो प्रकार के है।

23.3 पद्य का लक्षण

छन्दोमंजरी ग्रन्थ में पद्य का लक्षण कहा गया है- 'पद्यं चतुष्पदी'। चतुर्ष्णाम् पदानां समाहारः - चतुष्पदी यहा समाहार अर्थ में ई प्रत्यय है। अर्थात् चार पादात्मक पद्य होता है। गंगादास का आशय है कि छन्दशास्त्र के पारिभाषिक पादचतुष्ट्य समाहार रूप में वाड्मय ही पद्य होता है। और यह पद्य दो प्रकार का होता है 1. वृत्त पद्य 2. जाति पद्य। उनमें अक्षर गण घटित पद्य को वृत्त और मात्रिक गण घटित पद्य को जाति कहते हैं। वृत्तपद्य के उदाहरण है वसन्ततिलका आदि और जाति छन्द के उदाहरण हैं आर्यादि ऐसा छन्दोमञ्जरी में कहा गया है-

पद्यं चतुष्पदी तच्च वृत्तं जातिरिति द्विध।
वृत्तमक्षर संख्यातं जातिर्मात्रा कृता भवेत॥

अर्थात् छन्दोबद्ध पद्य होता है यह सामान्य लक्षण है। छन्दोमञ्जरी में कहा गया है कि चार पादों वाला पद्य होता है। वह पद्य दो प्रकार का होता है। वृत्तपद्य और जातिपद्य। अक्षरों के निर्दिष्ट संख्या से नियमित और निबद्ध पद्य वृत्तपद्य होता हैं अक्षरसंख्यात अक्षरों से एक दो आदि वर्णों से संख्यात य परिगणित जो होता है वह वृत्त होता है उसका उदाहरण है- धर्मक्षेत्रे कुरूक्षेत्रे समवेता युयुत्सव:।

मामका: पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय॥

इस श्लोक में अक्षर संख्या से पद्य निर्धरित होता हैं संख्या के आश्रित होकर ही पद्य की गणना होती है। जैसे इस श्लोक के प्रत्येक पाद में आठ वर्ण हैं उनमें से नियतमात्र वाले को जाति कहते है। जैसा कि छन्दोंमंजरी में कहा गया है- ''जातिर्मात्रिकृता भवेत्'' अक्षर अवयव रूप मात्र है उनके द्वारा निबद्ध किया जाय वह जाति है। जैसे- **तरूणं सर्षपशाकं नवौदनं पिच्छिलानि च दधीनि।**

अल्पव्ययेन सुन्दरि ग्राम्यजनो मिष्टमश्नाति॥

यह जातिरूप पद्य का एक उदाहरण है। मात्रा को आश्रित करके ही पद्य की गणना होती है। चरण या पाद के मात्र समानता से पद्य की गणना होती है। वामकरतल से एक बार जानुमण्डल की परिक्रमण के लिए जो समय अपोक्षित है वह मात्रा पद से वाच्य होता है। मात्रा तीन प्रकार की होती है। ह्रस्व मात्रा, दीर्घमात्रा और प्लुतमात्रा। जिसके उच्चारण में एक मात्रा का समय अपेक्षित होता है वह ह्रस्व होती हैं जिसके उच्चारण में दो मात्राओं का समय अपेक्षित होता है। वह दीर्घ होती है। और जिसके उच्चारण में तीन मात्राओं का समय अपेक्षित होता है वह प्लुत होती है। व्यंजन वर्ण के उच्चारण में अर्धमात्रा का समय अपेक्षित है। जैसा कहा गया है-

एक मात्रे भवेद् ह्रस्व: द्विमात्रे दीर्घ उच्यते।
त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यंजन चार्धमात्रकम्॥

गुरू लघु विन्यास की नियम व्यवस्था का नाम वृत्त है। गुरू लघु विन्यास नियम ही गणसाध्य होते हैं जैसे - म-य-र-स-त-ज-भ-न- ये आठ गण होते है। ये गण ही अक्षर गुरू लघु विन्यास भेद से भिन्न होते है।

पाठगत प्रश्न 23.1

1. छन्द शब्द की व्युत्पत्ति क्या है?
2. छन्द वेदपुरूष के किस अंग से पैदा हुआ है?
3. छन्द के कितने भेद हैं और कौन से हैं?
4. लौकिक छन्द कितने प्रकार के हैं और कौन से हैं?

टिप्पणी

5. पद्य का लक्षण क्या है ?

6. पद्य कितने प्रकार के हैं और कौन से है?

23.4 वृत्त के प्रकार

वृत्त तीन प्रकार के होते है- 1 समवृत्त 2 अर्धसमवृत्त 3 विषमवृत्त। जैसा कि छन्दोमंजरी में कहा गया है- सममर्धसमं वृत्तं विषमं चेति तत त्रिधा। इसी प्रकार वृत्तरत्नाकर में भी वृत्त के भेद कहे गये है- सममर्धसमं वृत्तं विषमं च तथापरम्।।

23.4.1 समवृत्त

जिस वृत्त के चारों पादों में गुरू लघु के क्रम से समान संख्या में अक्षर होते हैं वह समवृत्त होता है। छन्दोमंजरी में कहा है- ''समं समचतुष्टयम्'' अर्थात् चारों पाद या चरणों में समान संख्या के अक्षर होते है- वृत्तरत्नाकर में कहा है-

अंध्रयो सस्य चत्वारस्तुल्यलक्षणलक्षिता।
तच्छन्दः शास्त्रतत्त्वज्ञाः समं वृत्त प्रचक्षते।।

अंध्रय का अर्थ पाद होता है। जिस वृत्त के चारों पाद समान लक्षण से युक्त होते हैं अर्थात् जिस वृत्त में चारों पाद समान अक्षर संख्या विशिष्ट होते हैं वह समवृत्त कहा जाता है। जैसे इन्द्रवज्रा, शालिनी, मालिनी, रथोद्धता वंशस्थ आदि। जैसे

इदं किल व्याजमनोहरं वपुः तपः क्षमं साधयितुं य इच्छति।
ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधरया, शमीलतां छेत्तुमृषिर्व्यवस्यति।।''

इस श्लोक के चारों पादों में 12-12 अक्षर है। अतएव यह समवृत्त का उदाहरण है।

23.4.2 अर्धसमवृत्त

जिस वृत्त के प्रथम पाद और तृतीय पाद समान हो एवं द्वितीय और चतुर्थपाद समान होते है वह अर्धसमवृत्त होता है- जैसा कि केदारभट्ट ने वृतरत्नाकर में कहा है-

प्रथमांध्रिसमो यस्य तृतीयश्चरणों भवेत्।
द्वितीयस्तुर्यवद्वृत्तं तदर्धसममुच्यते।।

छन्दोमंजरी में कहा है- ''आदिस्तृतीयवद् यस्य पादस्तुर्यो द्वितीयवत्'' अर्थात् जिस वृत्त का प्रथम पाद तृतीयपादवत् और तुर्य (चतुर्थ) पाद द्वितीयवत् होता है वह अर्धसमवृत्त होता है। आधा समान होने के कारण अर्धसम कहा गया है। जैसे- पुष्पिताग्रा, सुन्दरी, मालाभरिणी आदि। अर्धसमवृत्त का उदाहरण–

क्व वयं क्व परोक्षमन्मथः, मृगशावैः सममेधितो जनः।
परिहास विजल्पितं सखे, परमार्थेन न गृह्यतां वचः॥

इसके प्रथम पाद में 10 अक्षर है वैसे ही तृतीयपाद में भी 10 अक्षर है। अतः प्रथम व तृतीयपाद तुल्य हैं इसी प्रकार द्वितीय एवं चतुर्थ पाद में 11 अक्षर हैं अतः यह अर्धसम का उदाहरण है।

23.4.3 विषमवृत्त

जिस वृत्त के प्रत्येक पाद में अक्षरों की संख्या भिन्न-भिन्न होती है वह विषम वृत्त होता है। जैसे कि छन्दोमंजरी में कहा गया है-

यस्य पाद चतुष्केखपि लक्ष्म भिन्नं परस्परम्।
तदाहुर्विषमं वृत्त छन्दः शास्त्र विशारदाः॥

जिस छन्द के चारों ही पादों में परस्पर भिन्न संख्या विशिष्ट अक्षर होते है वह विषम वृत्त है यह छन्दः शास्त्रचार्य कहते है। जैसे उद्गता सौरभकः आदि। विषमवृत्त का एक उदाहरण-

मृगलोचना शशिमुखी च, रूचिरदशना नितम्बिनी।
हंसललित गमना ललना, परिणीयते यदि भवेत् कुलोद्गता॥

इसके प्रथम एवं द्वितीय पाद में दस-दस अक्षर हैं तृतीय पाद में ग्यारह अक्षर है और चतुर्थपाद में तेरह अक्षर हैं इस प्रकार प्रत्येक पाद में अक्षरों की संख्या भिन्न होने से यह विषमवृत का उदाहरण है।

23.5 गण

गण् धतु से कर्ता एवं कर्म में अच् प्रत्यय से गण शब्द निष्पन्न होता है। गण का अर्थ समूह होता है। किन्तु यहां पद्य पाद घटक अक्षर त्रय समुदाय को गण कहते है छन्दः शास्त्र में प्राय आठ गण होते है जैसाकि छन्दोमंजरी में कहा गया है-

म्यरस्त जभ्नगैर्लान्तैरेभिर्दशभिरक्षरैः।
समस्तं वाङ्मयं व्याप्तं त्रैलोक्यमिव विष्णुना॥

मगण, यगण, रगण, सगण, तगण, जगण, भगण, और नगण ये आठ गण होते है। तथा ग वर्ण से गुरु एवं ल वर्ण से लघु स्वीकार किया गया है। ये सभी छन्दशास्त्र में परिव्याप्त है। जैसे भगवान विष्णु समस्त जगत को परिव्याप्त होते हैं, वैसे ये है। संस्कृत जगत में छन्द के ज्ञानलाभ के लिए गण का प्रयोजन होता है। पाद के गुरु लघु क्रम से तीन अक्षरों का समूह गण होता है। छन्दोमंजरी में गण का लक्षण क्रमशः कहा गया है।

टिप्पणी

मस्त्रिगुरुस्त्रिलघुश्च नकारो, भादिगुरुः पुनरादिलघुर्यः।
जो गुरुमधयगतो रलमधयः, सोखन्तगुरुः कथितोखन्तलघुस्तः॥
गुरुरेको गकारस्तु लकारो लघुरेककः।''

वृत्तरत्नाकर में केदारभट्ट ने गण लक्षणों को कहा है-

सर्वगुर्मो मुखान्तर्लौ यरावन्तगलौ सतौ।
ग्मधयाद्यौ षभौ त्रिलो नोखष्टौ भवन्त्यत्र गणास्त्रिकाः॥

अर्थात्- मगणः त्रिगुरु। जिस गण में सभी तीनों अक्षर गुरु संज्ञक होते हैं। वह मगण होता है। जैसे 'वागर्था' इस गण में तीनों अक्षर गुरु है। संयोग से पूर्व अक्षर भी गुरु संज्ञक होता है। अतएव र एवं थ के संयोग से पूर्व वर्ण गकार गुरु संज्ञक होता है। उसके बाद कहते हैं **''त्रिलघुश्च नकारः''** जिस गण में तीनों अक्षर लघु होते है वह नगण हाता है जैसे 'रचय' में तीनों लघु होने का उदाहरण है। **भगण का लक्षण है- भादिगुरुः** अर्थात् जिस गण में आदि अक्षर गुरु और शेष दो लघु होते है। वह भगण होता है। जैसे 'श्रीमति' यहां केवल प्रथम अक्षर गुरु है शेष दोनों अक्षर लघु होने से भगण का उदाहरण है। **यगण का लक्षण - ''आदिलघुः यः''** जिस गण में प्रथम अक्षर लघु तथा शेष दो गुरु होते है वह यगण होता है। जैसे 'मनीषा' इसमें प्रथम अक्षर लघु है शेष दोनों गुरु होने से यह यगण का उदाहरण है। **जगण का लक्षण ''गुरुमध्यगतः'' अर्थात् जगण** में केवल मध्यम (बीच का) अक्षर गुरु होता है। शेष प्रथम व तृतीय लघु होते हैं। जैसे मधूनि इसमे मध्यम 'धू' अक्षर गुरु है तथा प्रथम 'म' एवं तृतीया नि दोनों लघु होने से जगण का उदाहरण है। **रगण का लक्षण है - ''र लमधयः''** अर्थात् रगण में मध्य अक्षर लघु होता है। और शेष प्रथम व तृतीया गुरु होते हैं। जैसे कौमुदी यहाँ मध्यम अक्षर 'मु' लघु है तथा शेष प्रथम 'कौ' एवं अन्तिम 'दी' दोनो गुरु होने से रगण है। **सगण का लक्षण है - सोखन्त गुरुः** अर्थात् सगण में केवल अन्तिम अक्षर गुरु होता है शेष दोनों (प्रथम व मध्य) लघु होते हैं। जैसे- 'कमला' यहा अन्तिम 'ला' गुरु संज्ञक है तथा शेष प्रथम 'क' अक्षर मध्य 'म' दोनों लघु होने से सगण का उदाहरण है। **तगण का लक्षण है' अन्तलघुस्तः' अर्थात्** जिसमें अन्त लघु होता है जैसे - 'सर्वाणि' यहा अन्तिम 'णि' लघु सज्ञंक है तथा शेष 'स' 'र्वा' दोनों गुरु सज्ञंक होने से तगण है। क्योंकि संयोग से पूर्व भी गुरु होता है। 'र्वा' इस संयोग से पूर्व 'स' गुरु हुआ। इस प्रकार अक्षरत्रय के आधार से आठ गंण है। इसके बाद **गकार के विषय में कहा है ''गुरुरेको गकारस्तु''** यहाँ केवल एक अक्षर 'ग' का अर्थ गुरु होता है। जैसे 'सा' यहां सा गुरु वर्ण है। अन्त में **लकार के विषय में कहते हैं- 'लकारो लघुरेककः'** एक अक्षर वाला लघु वर्ण लकार होकर है। जैसे 'नु' यहां 'नु' लघुवर्ण है। जिसको 'ल' के रूप में लिखते है। यहाँ अक्षर का अर्थ - स्वर या स्वर युक्त व्यंजन से है।

पाठगत प्रश्न 23.2

7. वृत के कितने प्रकार है नाम लिखिए।
8. समवृत का लक्षण लिखिए।

9. अर्धसमवृत्त का लक्षण लिखिए।

10. विषमवृत्त का लक्षण लिखिए।

11. गण कितने है नाम लिखिए।

12. मगण का लक्षण लिखिए।

13. यगण का लक्षण लिखिए।

14. रगण का लक्षण लिखिए।

15. सगण का लक्षण लिखिए।

16. तगण का लक्षण लिखिए।

23.6 अक्षरों के चिह्न

प्राच्य पण्डितों ने गुरु वर्णो के लिए (ऽ) चिन्ह का प्रयोग किया है, लघुवर्णों के लिए (।) इस चिन्ह का प्रयोग किया है। किन्तु पाश्चात्य पण्डितों ने अन्य चिन्हों का व्यवहार किया है। पाश्चात्यों ने गुरुवर्णो के लिए (–) चिन्ह तथा लघुवर्णो के लिए (..ए..) चिन्ह का प्रयोग किया छात्रों को सरलता से समझने के लिए तालिका दी गयी है।

गण का नाम	लक्षण	चिन्ह	उदाहरण
मगण	त्रिगुरु:	ऽऽऽ	श्रीदुर्गा
नगण	त्रिलघु:	।।।	रचय
भगण	आदिगुरु:	ऽ।।	श्रीमति
यगण	आदिलघु:	।ऽऽ	मनीषा
जगण	गुरुमध्यगत:	।ऽ।	मधूनि
रगण	ल मधय:	ऽ।ऽ	कौमुदी
सगण	अन्तगुरु:	।।ऽ	कमला
तगण	अन्तलघु:	ऽऽ।	सर्वाणि

23.7 मात्रिकछन्द के उपयोगी गण

मात्रिक छन्द के लिए उपयोगी गण कारिका के माध्यम से कहते है–

ज्ञेया: सर्वान्त मध्यादिगुरवोऽत्र चतुष्कला:।
गणाश्चतुर्लघूपेता: पञ्चार्यादिषु संस्थिता:॥

टिप्पणी

आर्या आदि मात्रिक छन्द में चार मात्राओं वाले पांच गण होते है। अर्थात् प्रत्येक गण में प्रायः चार मात्रा होती हैं। वे हैं - सर्वगुरु, अन्तगुरु, मध्यगुरु, आदिगुरु, और सर्वलघु। सर्वगुरु इस उक्ति में सभी वर्ण गुरु संज्ञक होते है जैसे दुर्गा यहां दुर्गा में दोनों वर्ण गुरु संज्ञक है। 'अन्तगुरु' इस उक्ति में केवल अन्तिम अक्षर गुरु संज्ञक होता है शेष लघु सज्ञंक। जैसे रमणी यहाँ णी गुरु सज्ञंक अन्तिम वर्ण है तथा शेष र, म लघु सज्ञंक है। ''मध्यगुरुः'' इस उक्ति में केवल मध्य वर्ण गुरु संज्ञक होता है। जैसे शिवाय' यहाँ वा' गुरु सज्ञंक वर्ण है तथा शेष शि, य लघु सज्ञंक है। ''आदिगुरुः'' इस उक्ति में केवल आदि अक्षर गुरु होता है। जैसे 'शंकर' यहाँ केवल शं अक्षर गुरु है शेष 'क' एव 'र' लघु है। यहां शं अनुस्वार होने से गुरु वर्ण है। 'सर्वलघु' इस उक्ति में सभी अक्षर लघु होते है। जैसे रचयति' यहां सभी अक्षर लघु संज्ञक है। यहां ध्यान देने योग्य बात है कि मात्रिक छन्द में चार मात्राओं का गण होता है। इसलिए प्रकृत गण में चार मात्राएं अनिवार्य है। यहां लघु के लिए एक मात्रा और गुरु के लिए दो मात्राओं की गणना होती है।

वाम करतल से एकबार में जानु मण्डल की परिक्रमण के लिए जो समय अपेक्षित होता है वह मात्र पद वाच्य होता है। जैसा कि कहा गया है-

वामजानुनि तद्धस्तभ्रमणं यावता भेवत्।
कालेन मात्र सा ज्ञेया मुनिभिर्वेदपारगैः॥

मात्रा तीन प्रकार की होती है ह्स्व, दीर्घ और प्लुत।

छात्रों की सरलता के लिए मात्रिक छन्द की तालिका गण विचार हेतु प्रस्तुत है।

गण	चिन्ह	उदाहरण	मात्र
सर्वगुरुः	ऽऽ	दुर्गा	चार
अन्तगुरुः	।।ऽ	कमला	चार
मध्यगुरु	।ऽ।	शिवाय	चार
आदिगुरुः	ऽ।।	शंकर	चार
सर्वलघुः	।।।।	रचयति	चार

23.7.1 गुरुस्वर का वर्णन

छन्द के प्राणभूत गणों का निरूपण दिया गया हैं अब मन में शंका उत्पन्न होती है कि गुरू वर्ण कौन होता है? इसके समाधन के लिए छन्दोमंजरी में कारिका कही गयी है-

सानुस्वारश्च दीर्घश्च विसर्गी च गुरूर्भवेत्॥
वर्णः संयोगपूर्वश्च तथा पादान्तगोऽपि वा॥

केदार भट्ट ने वृत्तरत्नाकर मे कहा है- ''सानुस्वारो विसर्गान्तो दीर्घो युक्तपरश्च यः।
वा पादान्ते त्वसौ ग्वकौ ज्ञेयोखन्यो मात्रिको लृजुः।।''

अनुसार युक्त स्वर गुरू होता है। जैसे ग्रामं गच्छति यहाँ में पर अनुस्वार है अत: में म में अं अनुस्वार युक्त स्वर गुरू हुआ। अनुस्वार से रहित व्यंजन लघु गुरू हो सकता है। जैसे राम: यहा मकारोतरवर्ती अकार है वह गुरू होगा क्योंकि उसके अन्त में विसर्ग है। संयुक्त वर्ण जिससे परे है वह स्वर भी गुरू होता है अच् से अव्यवहित हल की संयोग संज्ञा होती है। इस प्रकार से संयोग वाले शब्द युक्तवर्ण होते हैं। जैसे रक्त में 'क्त' युक्तवर्ण है अत: इससे पूर्व 'अ' की गुरू संज्ञा होती है। वृतों मे लघुवर्ण विकल्प से गुरू होता है और जाति में लघु एवं गुरू होता है। वृतों में लघुवर्ण विकल्प से गुरू होते है। जैसे 'उपेन्द्रवज्रादपि दारूणोखसि' यह ग्यारह अक्षर वाले उपेन्द्रवज्रा छन्द का चरण है इसके अन्त में उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ लक्षण से गुरू अपेक्षित है। अत: विकल्प से सि को गुरू किया जाता है। छन्दशास्त्र में कहीं पर लघुत्व अपेक्षा में गुरू स्वर भी लघुता को प्राप्त होता है। जैसे-

तरूणं सर्षपशाकं नवोदनं पिच्छिलानि च दधीनि।
अल्पव्ययेन सुन्दरि ग्राम्यजनो मिष्टमश्नाति॥

यह आर्या नामक जाति है। इसके प्रथम पाद में 12 मात्रा, द्वितीपपाद में 18 मात्रा तृतीय पाद में पुन: 12 मात्रा तथा चतुर्थपाद में 15 मात्राएं होती है। इस श्लोक के द्वितीय और चतुर्थ पाद के अन्तिमवर्ण लघु को गुरूत्व की अन्त्यन्त आवश्यकता है। इसी प्रकार तृतीय पाद में सुन्दरी के इकार में संयुक्त वर्ण से पूर्व होने के कारण गुरूत्व की संभावना है। जिसे तृतीय पाद में 13 मात्रा हो जाती है इससे छन्द भंग हो जायेगा इस लिए विकल्प से लघुत्व प्राप्त होता है। अतएव इस कारिका में प्रकट किया गया है-

पादादाविह वर्णस्य संयोग: क्रमसंज्ञक:।
पुन:स्थितेन तेन स्याल्लघुतापि क्वचिद् गुरो:॥

इस नियम से अनुसार इसके संयोग पूर्व होने से गुरू भी लघुता को प्राप्त होता है।

इस प्रकार एकमात्र के ह्रस्व करने से तृतीय पाद में 12 मात्रा ही जानी चाहिए अत: छन्दभंग नहीं होगा।

प्र हे यह एक विकल्प विधायक सूत्र है इससे प्र और ह्रे इन दोनों शब्दों से पूर्ववर्ण को विकल्प से ह्रस्वता का विधान है।

जैसे- सा मंगल स्नानाविशुद्धगात्री गृहीत प्रत्यंग मनोपवस्त्र।
निर्वृत्तपर्ज्यन्यजलपाभिषेका फ्रुल्लकाशा वसुधेव रेजे।।
यहां प्रवर्ण के संयोगघटित होने से लघुता प्रतिपादित की गई है।

ह्र शब्द के परे होने पर भी गुरू वर्ण को लघुता की संभावना होती है जैसे

प्राप्य नाभिह्रदमज्जनमाशु प्रस्थितं निवसनग्रहणाय।
औपनिविकमरून्ध किल स्त्री बल्लभस्य करमात्मकराभ्याम्॥'

यहां ह्र वर्ण के संयोग घटित होने से उससे पूर्ववर्ती वर्ण 'भि' की गुरूता होनी चाहिए परन्तु इस शास्त्र या नियम से विकल्प से लघुता प्रतिपादित की गई है, अत: इसमें भि की लघुसंज्ञा होती है।

टिप्पणी

23.7.2 यति

यम् धातु से भाव में क्तिन् प्रत्यय से यति शब्द निष्पन होता है। यति का अर्थ विराम होता है। छन्दशास्त्र में यति शब्द है, जिह्वा जहाँ रूकती है या विश्राम करती है वहाँ पर यति होती है।जैसा कि गंगादास ने कहा है- यतिर्जिह्वेष्ट विश्रामस्थानं कवभिरूच्यते।

सा विच्छेदविरामाद्यैःपदैर्वाच्या निजेच्छय॥

अर्थात पद्य के उच्चारण के समय में जिह्वा स्वतः ही जहाँ विश्राम प्राप्त करने की इच्छा करती है वहाँ पर यति होती है। विच्छेद विराम आदि पदों से भी यति का बोध होता है। यह यति पाद के मध्य या अन्त भेद से दो प्रकार की होती है पद्य के चरण को पाद कहते हैं। चतुष्पादात्मक पद्य के प्रतिपाद के अवसान(अन्त) में स्वभावतः ही यति होती है उसे पादान्त कहा जाता है। जैसे–

न तज्जलं यन्न सुचारूपंकजम्,। न पंकजं तद यदलीनषट्पदम्। इस वंशस्थविल छन्द के पद्य के सुचारूपंकजम् इस प्रथम पाद के अवसान में तथा षट्पदम् इस द्वितीय पाद के अवसान में पादान्त यति है। जहाँ पर निर्दिष्ट अक्षरों के बाद यति होती है उसे पादमधयगा यति कहते हैं। जैसे सरसिजमनुविद्ध पाद के अवसान मे पादान्त यति है, उसी प्रकार प्रथम अक्षर से आठवें अक्षर के बाद अनुविद्धम् यहाँ पादमधयगा यति है। यहां उल्लेख है कि जिस अक्षर में यति निर्दिष्ट है उस अक्षर पद के अन्तिम में होनी चाहिए। यदि पदमध्य में यति होती है तो वह यति कानों के लिए कर्कश होने के कारण रमणीयता को छोड़ देती है। स्वर सन्धि के पूर्वस्थ पदमध्यस्थ यति अरम्य नहीं होती है। जैसे कि कृष्णः ''पुष्णात्वतुलमहिमा मां करूणया'' यहां पुष्णेत्यत्र यति पदमध्यगा है किन्तु त्वतुले ति स्वरसन्धि से वह पदमध्यगा यति रमणीय ही होती है। केदाभट्ट ने वृत्तरत्नाकर में यति के विषय में एक कारिका कही है- यतिर्विच्छेद संज्ञिका अर्थात विच्छेद की यति संज्ञा होती है।

पाठगत प्रश्न 23.3

17. गुरूवर्ण कौन होता है?
18. यति किसने प्रकार की होती है?
19. यति के कौन से प्रभेद हैं?
20. यति का लक्षण क्या है?

23.8 दण्डक

वृत्तरत्नाकर में दण्डक का लक्षण कहां है- यदिह ''नयुगलं ततः सप्तरेफास्तदा चण्डवृष्टिप्रपातो मवेद् दण्डकः'' यहां दो नगणों के बाद सात रगण विद्यमान होते हैं। वह चण्डवृष्टिप्रपात नामक दण्डक होता है।

'तदूर्ध्व चण्डवृषयादिदण्डका परिकीर्तिता:' इस श्लोक से 26 से अधिक अक्षरपाद को छन्द की संज्ञा कही है। अर्थात 26 से अधिक 27 आदि अक्षर वाले पाद का छन्द दण्डक होता है। दण्डक शब्द का अर्थ है दण्ड प्रदान करने वाला। इस छन्द में भी दीर्घ पाद होते है। इस प्रकार के उच्चारण में कष्ट होता है वह कष्ट ही दण्ड होता है। दण्डक के चण्डवृष्टि आदि विशेष भेद होते है।

23.9 गाथा लक्षण

केदारभट्ट ने वृत्तरत्नाकर में गाथा का लक्षण प्रतिपादित किया है-

विषमाक्षरपादं वा पादैरसमं दशधर्मवत्।
यच्छन्दो नोक्तमत्र गाथेति ततृ सूरिभि: प्रोक्तम्॥
शेष गाथा स्त्रिभि: षड्भिश्चरणैश्चोपलक्षिता:।

इस श्लोक विशेष लक्षण से अलक्षित प्रयुज्यमान छन्दों की सामान्य संज्ञा गाथा होती है। जो चण्डवृष्टयादिविशेष से भिन्न होते हैं। तीन या छ: पादो से संलक्षित गाथा होते हैं। जिस छन्द में चार पाद से भिन्न संख्या में पाद होते हैं। तथा गुरूलघुक्रम भी भिन्न होता है एवं प्रत्येक चरण में अक्षर संख्या भी भिन्न होता है उस छन्द को गाथा कहा जाता है। गाथा का उदाहरण-

इस श्लोक मे तीन पाद है अत: यह छन्द गाथा नाम से जाना जाये।

23.10 छन्दों की सामान्य संज्ञा

यहां अक्षरों के ह्रास वृद्धि के अनुसार समवृत्त छन्दों के नाम निर्देश किये जाते हैं। एक अक्षर से आरम्भ करके एक एक अक्षर से बढते हुए पादों से भिन्न भिन्न छन्द हो जाते हैं। एक पाद में एक अक्षर होता है तो एक छन्द होता है। उसके बाद एक एक अक्षर जोड़कर अन्य छन्दों का निर्माण किया जाता है जैसा कि केदारभट्ट ने कहा है -

आरम्भै काक्षरात् पादादेकैकाक्षरवर्धितै:।
पृथक् छन्दो भवेत् पादैर्यावत् षड्विंशतिं गताम्॥

एकाक्षर से पाद का आरम्भ करके एक एक अक्षर बढ़ाते हुए पाद से भिन्न भिन्न छन्द बनेंगे। यह वृद्धि कितनी होती है। यह जिज्ञासा पैदा होती है उसका समाधान दिया है कि 26 संख्यात्मक पाद पर्यन्त वृद्धि सम्भव होती है। अर्थात् समवर्ण वृत्त में एक अक्षर से एक करके चार पाद में एक छन्द होता है। एक के बढ़ने से दो वर्णों से चार पादों के निर्माण में भी पृथक् छन्द होता है। इस प्रकार 26 वर्णों तक पृथक् पृथक् छन्दों की सम्भावना है। इनकी पृथक् पृथक् संज्ञा होती है। जैसा केदारभट्ट ने कहा है-

उक्ताखत्युक्ता तथा मध्याप्रतिष्ठाखन्या सुपूर्विका।
गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती पंक्तिरेव च।

त्रिष्टुप् च जगतीं चैव तथाखतिजगती मता।
शक्वरी साखतिपूर्वा स्यात् अष्ट्यत्यष्टी ततः स्मृते।
धृतिश्चातिधृतिश्चैव कृतिः प्रकृतिराकृतिः।
विकृतिः संकृतिश्चैव तथाखतिकृतिरुत्कृतिः॥

अर्थात् एकाक्षर के छन्द का नाम उक्ता, द्व्यक्षर के छन्द का नाम अत्युक्ता, त्रियक्षर के छन्द का नाम मध्या, चतुरक्षर के छन्द का नाम प्रतिष्ठा, पंचाक्षर के छन्द का नाम सुप्रतिष्ठा और षडाक्षर के छन्द का नाम गायत्री होता है। सात अक्षर के छन्द का नाम उष्णिक, आठ अक्षर के छन्द का नाम अनुष्टुप, नौ अक्षर के छन्द का वृहती, 10 अक्षर के छन्द का नाम पंक्ति, 11 अक्षर के छन्द का नाम त्रिष्टुप, 12 अक्षर के छन्द का नाम जगती, 13 अक्षर के छन्द का नाम अतिजगती, 14 अक्षर के छन्द का नाम शक्वरी, 15 अक्षर के छन्द का नाम अतिशक्वरी, 16 अक्षर के छन्द का नाम अष्टि, 17 अक्षर के छन्द का नाम अत्यष्टि, 18 अक्षर के छन्द का नाम धृति, 19 अक्षर के छन्द का नाम अतिधृति, 20 अक्षर के छन्द का नाम कृति, 21अक्षर के छन्द का नाम प्रकृति, 22 अक्षर के छन्द का नाम आकृति, 23 अक्षर के छन्द का नाम विकृतिः, 24 अक्षर के छन्द का नाम संस्कृति, 25 अक्षर के छन्द का नाम अतिकृति, 26 अक्षर के छन्द का नाम उत्कृति। इस प्रकार एक पाद में इतनी संख्या होनी चाहिए।

छात्रों को सरलता से समझने के लिए तालिका प्रस्तुत है।

छन्द का नाम	पाद गत अक्षर संख्या	श्लोक गत अक्षर संख्या
उक्ता	1	4
अत्युता	2	8
मध्या	3	12
प्रतिष्ठा	4	16
सुप्रतिष्ठा	5	20
गायत्री	6	24
उष्णिक्	7	28
अनुष्टुप	8	32
बृहती	9	36
पंक्ति	10	40
त्रिष्टुप्	11	44
जगती	12	48

अतिजगती	13	52
शक्वरी	14	56
अतिशक्वरी	15	60
अष्टि	16	64
अत्यष्टि	17	68
धृति	18	72
अतिधृति	19	76
कृति	20	80
प्रकृति	21	84
आकृति	22	88
विकृति	23	92
संस्कृति	24	96
अतिकृति	25	100
उत्कृति	26	104

पाठगत प्रश्न 23.4

21. दण्डक का लक्षण क्या है?

22. गाथा का लक्षण क्या है?

23. गायत्री में कितने अक्षर होते हैं?

24. अनुष्टुप् छन्द में कितने अक्षर होते हैं?

25. त्रिष्टुप् छन्द में कितने अक्षर होते हैं?

26. जगती छन्द में कितने अक्षर होते हैं?

पाठसार

छादयति आच्छादयति वा इति छन्दः। वैयाकरण पाणिनि के मत में अभिप्राय अर्थ बोधक या आनन्दपर्याय मुक्तार्थक छन्द धातु से शब्द की उत्पत्ति होती है। जो पाप का आच्छादन करता

टिप्पणी

है वह छन्द है। छन्द वस्तुत लौकिक और वैदिक भेद से दो प्रकार का होता है। लौकिक छन्द पिंगलादि आचार्यो के मत में मात्र और वर्ण के भेद से दो प्रकार का होता है। उनमें से अक्षरगण घटित पद्य वृत्त होता है। मात्रिकगणघटित पद्य जाति होता है। वृत्त पद्य का उदाहरण है वसन्ततिलका आदि, जाति छन्द का उदाहरण है आर्या आदि। वृत्त तीन प्रकार के होते है। 1. समवृत्त 2. अर्धसमवृत्त 3. विषमवृत्त। जिस वृत्त के चारों पादों में गुरुलघु के क्रम से समान संख्यात्मक अक्षर होते हैं वह समवृत्त होता है। जैसे शालिनी, मालिनी इत्यादि। जिस वृत्त के प्रथम व तृतीय और दूसरा व चौथा पाद समान होता है। वह अर्धसमवृत्त होता है। जैसे पुष्पिताग्रा सुन्दरी आदि। जिस वृत्त के चारों पादों में भिन्न संख्यात्मक वर्ण होते हैं। वह विषमवृत्त होता है। जैसे उद्गाध, सौरभक आदि। छन्दशास्त्र में आठ गण होते है। जैसे - मगण, यगण, रगण, सगण, तगण, जगण, भगण, और नगण ये आठ गण होते है। मात्रिक छन्दों में पांच गण होते है। प्रत्येक गण में प्रायः चार मात्राएं होती है। वे है- सर्वगुरु, अन्तगुरु, मध्यगुरु, आदिगुरु, और सर्वलघु। सानुस्वार, दीर्घ, विसर्ग एवं संयोग से पूर्व वर्ण गुरु हो जाता है। विराम का नाम यति है। जिह्वा जहां विश्राम करती है। वहां यति होती है। यह दो प्रकार पादान्त और पादमध्यगा से होती है। 26 से अधिक अक्षर वाले पाद को दण्डक कहते हैं। यहां अक्षरों के ह्रास और वृद्धि (कम ज्यादा) के अनुसार समवृत छन्दों के नामों का निर्देश किया गया है। एक अक्षर से आरम्भ करके एक-एक अक्षर के बढ़ने से भिन्न-भिन्न छन्द होते हैं। एक पाद के एक अक्षर होता है। तो वह भी छन्द होता है। उसके बाद एक अक्षर को आरम्भ करके क्रमशः एक-एक अक्षर को जोडकर अन्य छन्दों का निर्माण किया जाता है। उनकी उक्ता आदि संज्ञा प्रदान की गई है।

आपने क्या सीखा

- छन्द, छन्द लक्षण एवं उसका सामान्य परिचय।
- पद्य का लक्षण जाना।
- वृत्त के लक्षण एवं भेदों को जाना।
- छन्द लक्षण में प्रयुक्त गण, यति, दण्डक, लघु, गुरु आदि को जाना।

पाठान्त प्रश्न

1. छन्द का लक्षण प्रतिपादित कीजिए।
2. छन्द के भेदों को प्रतिपादित कीजिए।
3. पद्य के लक्षण को प्रतिपादित करके भेद लिखिए।
4. वृत्त के भेदों का प्रतिपादित कीजिए।
5. समवृत्त के विषय में लघु प्रबन्ध लिखिए।

6. अर्ध समवृत्त के विषय में लघु प्रबन्ध लिखिए।
7. विषमवृत के विषय में लघु प्रबन्ध लिखिए।
8. गणों के विषय में निबन्ध लिखिए।
9. गण कितने हैं उनका विवरण दीजिए।
10. मात्रिक छन्दों का वर्णन कीजिए।
11. गुरुस्वरों का प्रतिपादन कीजिए।
12. यति का लक्षण स्पष्ट कीजिए।
13. गाथा के लक्षण को स्पष्ट कीजिए।
14. दण्डक के लक्षण को स्पष्ट कीजिए।
15. छन्दों की सामान्य संज्ञा को निरूपण कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

23.1

1. छादयति आछादयति वा इति छन्दः।
2. पैरों से।
3. दो प्रकार के। लौकिक और वैदिक।
4. दो प्रकार के। मात्रिक और वर्णिक
5. पद्य चतुष्पदी
6. दो प्रकार के। वृत्तपद्य और जातिपद्य।

23.2

7. वृत्त तीन प्रकार के है। 1. समवृत्त 2. अर्धसमवृत्त 3. विषमवृत्त
8. अंध्रयो यस्य चत्वारस्तुल्य लक्षण लक्षिताः।
   तच्छन्दः शास्त्रतत्वज्ञाः समं वृत्तं प्रचक्षते।।
9. प्रथमांध्रिसमो यस्य तृतीयश्चरणों भवेत्।
   द्वितीय स्तुर्यवद्वृत्तं तदर्धसममुच्यते।।

10. यस्य पादचतुष्केखपि लक्ष्मं भिन्नं परस्परम्।
    तदाहुर्विषमं वृत्तं छन्दः शास्त्र विशारदाः।।
11. आठ गण- मगण,यगण,रगण,सगण,तगण,जगण,भगण,नगण।
12. त्रिगुरुः।
13. आदिलघुः।
14. लमध्यः।
15. अन्तगुरुः।
16. अन्तलघुः।

23.3

17. सानुस्वारः दीर्घश्च विसर्गीय संयोगपूर्वश्च वर्णः गुरुः भवेत्।
18. द्विविध।
19. पादान्ता और पादमधयगा।
20. यतिर्जिह्वेष्ट विश्राम स्थानं कविभिरुच्यते।
    सा विच्छेद विरामाद्यैः पदैर्वाच्या निजेच्छया।।

23.4

21. तदूधर्व चण्डवृष्ट्यादिदण्डकाः परिकीर्तिता।
22. शेषं गाथास्त्रिभिः षड्भिश्चरणैश्चोपल क्षिताः।
23. चतुर्विशति 24।
24. द्वात्रिंशत् 32।
25. 44
26. 48

24

छन्द

संस्कृत जगत में प्राय: सर्वत्र छन्दों का प्रयोग देखा जाता है। श्लोकादि का निर्माण तो छन्द के बिना संभव ही नहीं है। छन्द से रचित पद्य अधिक सौन्दर्य को धारण करते हैं। अतएव संस्कृत जगत छन्दोमय है इसमें कोई सन्देह नहीं है। काव्य नाटक आदि लौकिक शास्त्रों में छन्दों का प्रचुर प्रयोग देखा जाता है। न केवल लौकिक साहित्य में अपितु वैदिक साहित्य में भी बहुत अधिक प्रयोग देखा जाता है। केवल यजुर्वेद ही गद्य है। शेष तीनों संहिताएं पद्यमय है। तीनों वेदों में त्रिष्टुप् आदि छन्द से मन्त्रों की रचना की गई है। छन्द सहित मन्त्र अधिक समय तक स्मरण में रहते हए सौन्दर्य को धारण करते हैं प्राचीन शास्त्रकारों ने वेदान्तादि शास्त्र ग्रन्थ भी अनुष्टुप आदि छन्दों से रचित थे। संस्कृत जगत में सर्वप्रथम सर्व रचनाएं पद्यमय ही थीं। लौकिक काव्यादि में भी लौकिक छन्द का प्रयोग दिखाई देता है। वसन्ततिलका आदि छन्द से रचित श्लोक अधिक मनोग्राही होता है। कालिदास आदि महाकवि तो छन्द से पद्य निर्माण करने में अतीव पटु थे। कुछ कवियों ने तो एक दो छन्दों का आश्रय लेकर सम्पूर्ण ग्रन्थ की रचना कर दी। छन्द के बिना संस्कृत जगत अन्धकारमय ही है। काव्यों में छन्द की अत्यधिक आवश्यकता अनुभव की जाती हैं। प्रकृतपाठ में कुछ प्रसिद्ध छन्दों के लक्षणों व उदाहरणों की समालोचना करेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे :

- विविध छन्दों के लक्षण जान पाने में;
- छन्दों को उदाहरणों में समन्वय कर पाने में;
- काव्यों में विविध स्थलों पर छन्दों का निर्णय कर पाने में और
- छन्दों के भेद-उपभेदों का ज्ञान प्राप्त कर पाने में।

टिप्पणी

24.1 मात्रिक छन्द

मात्रिक छन्द में मात्राओं की गणना की जाती है प्रत्येक गण में चार मात्राएं होती हैं इस छन्द में मात्रा का अधिक महत्व दिखाई देता हैं यहाँ अक्षर या वर्णों की गणना नहीं होती है। यहां पर मान्त्रिक छन्द में केवल आर्या का वर्णन किया गया है।

24.1.1 आर्या छन्द

यह मात्रिक छन्द है अर्थात् मात्राओं की गणना होती है। प्रत्येक गण में चार मात्राएं होती हैं। आर्या का सामान्य लक्षण-

लक्ष्मैतत्सप्त गणा गोपेता भवति नेह विषमे जः।
षष्ठोखयं नलघू वा प्रथमेखर्धे नियतमार्यायाः॥
षष्ठे द्वितीय लात्परके न्ले मुखलाच्च सयति पदनियम :।
चरमेखर्धे पञ्चमके तस्मादिह भवति षष्ठोलः॥

अन्वय :- आर्यायाः प्रथमें अर्धे सतत् लक्ष्म नियतम् (अस्ति) गोपेताः सप्त गणा (भवन्ति), इह विषमे जः न भवित, षष्ठः अयम् (जः भवित), वा न लघु (भवतः)। न षष्ठे न्ले द्वितीय लात् (पूर्वम्) परके (न्ले) मुखलात् (पूर्वम्) सयति पद नियमः। चरमे अर्धे (एतत् लक्ष्य नियतम्) पञ्चमके (न्ले) तस्मात् (सयतिपद नियमः) इह षष्ठो लः भवति।

व्याख्या :- आर्या छन्द के प्रथमार्ध में प्रथम द्वितीय चरणों यह उच्चमान लक्षण निश्चित हैं वह लक्षण क्या है ? तब कहते हैं। गुरू के साथ सात संख्या के गण हैं। इस आर्या के विषम गण में (प्रथम तृतीय पञ्चम व सप्तम) जगण नहीं होता हैं षष्ठस्थान पर जगण होता हैं अथवा षष्ठ में नगण के साथ एक लघुस्वर होता है। अब यति के नियम को कहते है। यदि षष्ठस्थानक गण में लघुस्वर के साथ नगण होता है तो षष्ठस्थानक गण में चारों लघुसंज्ञायुक्त अक्षर होते हैं। वहां चारों लघु रूप षष्ठ गण का तो द्वितीय लघु के पूर्व अर्थात् प्रथम लघु में यति होती हैं। इस प्रकार षष्ठगण के प्रथम लघु में ही पद की समाप्ति होती है। पुनः यदि सप्तमस्थानक गण में यदि चारों लघुसंज्ञक युक्त अक्षर होते है तो चारों लघु रूप सप्तम गण के प्रथम से लघु के पूर्व अर्थात् षष्ठगण के अन्तिम अक्षर पर यति और पद समाप्ति होती हैं यति शब्द का अर्थ यदि और पदसमाप्ति दोनों कार्य होते हैं। इस प्रकार पूर्वार्ध लक्षण और यति पद का नियम है।

अब द्वितीयार्ध का लक्षण कहते है- उत्तरार्ध तृतीय चतुर्थ पाद में पञ्चमस्थानक गण में चारों लघु संज्ञायुक्त अक्षर होते हैं। यदि पञ्चमगण के प्रथम लघु के पूर्व अर्थात् चतुर्थगण के अन्तिम अक्षर पद पर समाप्ति होनी चाहिए। पुनः षष्ठ स्थानवर्ती गण एक लघु रूप होता हैं षष्ठगण की एक लघु रूपता ही उत्तरार्ध को पूर्वार्ध से विशेषता, अवशिष्ठ सब तो पूर्वार्ध के समान होंगे। इस प्रकार पूर्वार्ध में 30 मात्रा और उत्तरार्ध में 27 मात्राएं होंगी। यह आर्या छन्द मात्रिक छन्दों में विषमवृत्त है। इसके प्रत्येक चरण में भिन्न-भिन्न अक्षर होते हैं।

उदाहरण – ।।। ।, । ऽ ।, ऽ ऽ ऽ ।।, ऽ ऽ,।।।।, ।। ऽ,ऽ

सुभग स लिलावगाहा, पाटल संस र्गसुरभि वनवाताः

ऽ ऽ , । । । ।, ऽ ऽ । । ऽ , । ।, ऽ, । ।। ऽ, ऽ

प्रच्छा यसुलभ निद्रा, दिवसाः परिणा म रमणी याः

उदाहरण में लक्षण समन्वय – प्रथम अर्ध के प्रथम द्वितीय चरणों में अन्त में स्थित गुरू वर्ण के साथ सात गण हैं इस प्रकार विषम गण में (प्रथम, तृतीय, पञ्चम, एवं सप्त गण में) जगण नहीं है। षष्ठ गण में लघु स्वर के साथ नगण हैं अर्थात् षष्ठस्थानक गण में चारों लघु संज्ञक अक्षर हैं। अतएव चारों लघु रूप षष्ठ के द्वितीय के (सु के) पूर्व अर्थात् प्रथम लघु में (ग में) यति होती हैं इसी प्रकार षष्ठगण के प्रथम लघु में गकार में ही पद समाप्ति होती हैं उत्तरार्ध का भी तृतीय और चतुर्थ चरणों के अन्त में स्थित गुरू वर्णन के साथ सात गण विद्यमान हैं। उत्तरार्ध के विषय गण में भी जगण नहीं है। षष्ठस्थानक गण में एक लघुता विद्यमान है। पंचम स्थान में चारों लघुता अक्षर नहीं है। अतः इस श्लोक में लक्षणोंक्त यति नियम प्रवर्तत नहीं होता। इस श्लोक के पूर्वार्ध में 30 मात्रा और उत्तरार्ध में 27 मात्राएं विद्यमान है। यह आर्याछन्द मात्रिक छन्दों में विषमवृत है।

पाठगत प्रश्न 24.1

1. आर्या छन्द मात्रिक है या वर्णिक?
2. आर्या छन्द के विषम गण में कौन सा गण नहीं होता?
3. आर्या छन्द मात्रिक में समवृत्त है या विषमवृत?
4. आर्या छन्द के पूर्वार्ध में कितनी मात्रा होती हैं?
5. आर्या छन्द के उत्तरार्ध में कितनी मात्रा होती हैं?

24.2 वर्णिक छन्द

मात्रिक छन्दों का वर्णन करके अब वर्णिक छन्दों का वर्णन करते हैं। इसमें वर्णों की गणना होती है मात्राओं की नहीं। प्रत्येक गण में तीन अक्षर होते है। इस पाठ में केवल वर्णिक छन्दों में समवृत्त छन्द की चर्चा विहित हैं समवृत्त नामक छन्द के प्रत्येक चरण में समान अक्षर होते हैं।

24.2.2 इन्द्रवज्रा

अधिकांश पद्य अनुष्टुप छन्द से रचे गये है इसमें कोई सन्देह नहीं है। अनुष्टुप को छोड़कर अधिकांश पद्य इन्द्रवज्रा छन्द से रचित दिखाई देते हैं। इस छन्द से श्लोक निर्माण अत्यन्त सरल

टिप्पणी

है। और सुनने में भी कानों को मधुरता प्रदान करता हैं अतएव कवियों ने इस छन्द से बहुत अधिक श्लोक की रचना की है।

लक्षण :- ''स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः''।

यह इन्द्रवज्रा छन्द त्रिष्टुप् छन्द का ही भाग है। यह समवृत्त छन्द है। क्योंकि इसके चारों पादों में समान अक्षर व लक्षण होते हैं। इसके प्रत्येक चरण में दो तगण,एक जगण और अन्त में दो गुरू होते हैं। इसके प्रत्येक चरण में ग्यारह वर्ण होते है।

उदाहरण में लक्षण समन्वय

ऽ ऽ ।, ऽ ऽ ।,। ऽ ।, ऽ ऽ ऽ ऽ ।, ऽ ऽ ।, । ऽ ।, ऽ ऽ

गोष्ठेगि रिं सव्य करेण धृत्वा, रूष्टेन्द्र वज्राह मि मुक्त वृष्टौ ।

ऽ ऽ । , ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ , ऽ ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ

यो गोकुलं गोप कुलं च सुस्थं, चक्रे सनो रक्षतु चक्रपाणिः ॥

इस श्लोक के प्रत्येक चरण में क्रमशः दो तगण एक जगण और दो गुरू है। इस लिए यह इन्द्रवज्रा का उदाहरण है। प्रत्येक चरण में समान गण एवं क्रम है। प्रत्येक चरण में ग्यारह है इस छन्द के पाद के अन्त में यति होती है।

24.2.2 उपेन्द्रवज्रा

लक्षणः- ''उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततोगौ''।

उपेन्द्रवज्रा त्रिष्टुप् का भेद है इस छन्द में क्रमशः जगण, तगण, जगण और अन्त में दो गुरू होते हैं। प्रत्येक चरण में ग्यारह वर्ण होते हैं तथा पाद के अन्त में यति होती है।

उदाहरण में लक्षण समन्वय :-

। ऽ ।, ऽ ऽ ।, । ऽ ।, ऽ ऽ, । ऽ ।, ऽ ऽ ।, । ऽ ।, ऽ ऽ

जिता जगत्येष भवभ्रमस्तै, र्गुरूदितं येगिरिशं स्मरन्ति।

। ऽ ।, ऽ ऽ ।, । ऽ ।, ऽ ऽ, । ऽ ।, ऽ ऽ ।, । ऽ ।, ऽ ऽ

उपास्य मानं कमलास नाद्यै, रूपेन्द्र वज्रा युधवारि नाथैः ॥

उपेन्द्रवज्रा नामक छन्द में प्रतिचरण क्रमश जगण, तगण, जगण और अन्त में दो गुरू होते हैं। इस श्लोक में भी प्रथम जगण उसके बाद तगण उसके बाद जगण और अन्त में दो गुरू वर्ण है तथा प्रत्येक चरण में ग्यारह वर्ण है। और पाद के अन्त में यति है अतः उपेन्द्रवज्रा छन्द घटित होता है।

24.2.3 शालिनी मतौ

लक्षण :- ''शालिन्युक्ता म्तौ तगौ गोखब्धिलोकैः।''

व्याख्या :- शालिनी छन्द भी त्रिष्टुप् का भेद है। जिसके प्रत्येक चरण में मगण, तगण, तगण और अन्त में दो गुरू होते है। अम्बुधि चार होते हैं और लोक सात होते हैं। अत: शालिनी छन्द में चौथे और सातवें वर्ण के बाद यति होती है। प्रत्येक चरण में ग्यारह वर्ण होते हैं।

उदाहरण में लक्षण समन्वय-

ऽ ऽ ऽ , ऽ ऽ ।, ऽ ऽ ।, ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ, ऽ ऽ ।, ऽ ऽ ।, ऽ ऽ

अंहो हन्ति, ज्ञान वृद्धिं विधत्ते, धर्मदत्ते, कामयर्थं च सूते

ऽ ऽ ऽ, ऽ ऽ ।, ऽ ऽ ।, ऽ ऽ ऽ ऽ, ऽ ऽ ।, ऽ ऽ ।, ऽ ऽ

मुक्तिं दत्ते सर्व दोपास्य माना, पुंसां श्र.द्धाशालिनी विष्णु भक्ति:॥

इस श्लोक के प्रत्येक चरण में ग्यारह वर्ण है। इस श्लोक के प्रत्येक चरण में क्रमश मगण, तगण, तगण और अन्त में दो गुरू है। चतुर्थ एवं सप्तम अक्षर के बाद यति होती है यह लक्षण चारों चरणों में विद्यमान होने से शालिनी का लक्षण घटित होता है।

पाठगत प्रश्न 24.2

6. इन्द्रवज्रा छन्द का लक्षण क्या है?
7. इन्द्रवज्रा वृत्त के एक पाद में कितने अक्षर होते हैं?
8. इन्द्रवज्रावृत्त समवृत्त है या विषम वृत?
9. उपेन्द्रवज्रा वृत्त का लक्षण क्या है?
10. उपेन्द्रवज्रा वृत्त के एक पाद में कितने अक्षर होते हैं?
11. शालिनी वृत्त का लक्षण क्या है?
12. शालिनी वृत्त के एक पाद में कितने अक्षर होते हैं?

24.2.4 रथोद्धता

लक्षण:- ''रान्नराविह रथोद्धता लगौ ।

व्याख्या:- यह त्रिष्टुप् छन्द का कोई भेद है। जिस वृत्त के प्रत्येक पाद में क्रमश: रगण, नगण, रगण अन्त में लघु तथ गुरू वर्ण होते है। इस प्रकार प्रत्येक चरण में ग्यारह वर्ण होते है। पाद के अन्त में यति का नियम है।

उदाहरण में लक्षण समन्वय

ऽ । ऽ, ।।।, ऽ।ऽ,। ऽ ऽ । ऽ, । ।।, ऽ । ऽ, । ऽ

किंत्वया सुभट दूरवर्जितं, नात्मनो न सुहृदां प्रियंकृतम्।

टिप्पणी

ऽ । ऽ, ।।।, ऽ। ऽ, । ऽ, ऽ । ऽ, । । ।, ऽ। ऽ,। ऽ

यत्पला यनप रायण स्यते, याति धू- लिरधुनारथोद्धता ॥

प्रकृत श्लोक के प्रत्येक चरण में रगण उसके बाद नगण है उसके बाद पुन रगण और उसके बाद लघु और गुरू वर्ण हैं इस श्लोक के पादान्त में यति है। प्रकृत लक्षण के साथ इस श्लोक का अन्वय है अत: यहां रथोद्धता छन्द हैं प्रत्येक चरण में यह लक्षण घटित हो रहा है। तथा एक प्रत्येक चरण में ग्यारह अक्षर होने से कुल 44 अक्षर है। यह त्रिष्टुप् का भेद है।

24.2.5 वंशस्थ

संस्कृत साहित्य जगत में वंशस्थ छन्द का प्रचुर प्रयोग दिखाई देता है यह अत्यन्त प्रसिद्ध छन्द है। कालिदास ने इस का बहुत प्रयोग किया है। इस छन्द से रचित श्लोक में अधिक चमत्कार पैदा होता है।

लक्षण :- ''जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ।''

व्याख्या:- जगती छन्द का कोई भाग वंशस्थ वृत्त होता है। जिस वृत्त के प्रत्येक पाद में जतौ अर्थात् जगण और तगण उसके बाद जरौ अर्थात् जगण और रगण होते हैं, वह वंशस्थ के नाम से प्रसिद्ध होता है अर्थात् इसके प्रत्येक चरण में क्रमश जगण तगण, जगण और रगण होते हैं। यह समवृत्त छन्द है। अत: चारों पादों में समान लक्षण है इसके प्रत्येक पाद में 12 अक्षर होते हैं। इस प्रकार कुल 48 अक्षर होते हैं तथा पाद के अन्त में यति होती है।

उदाहरण में लक्षणान्वय

। ऽ ।, ऽ ऽ ।, । ऽ।, ऽ। ऽ, । ऽ।, ऽ ऽ ।, । ऽ । ऽ । ऽ

नमोखस्त्व नन्ताय सहस्र मूर्तये, सहस्र पादाक्षि शिरोरुबाहवे

। ऽ।, ऽ ऽ ।,। ऽ ।, ऽ । ऽ । ऽ।, ऽ ऽ ।, । ऽ।,ऽ । ऽ

सहस्र नाम्ने पुरुषाय शाश्वते, सहस्र कोटीयु गधरिणे नम:॥

इस श्लोक के प्रत्येक पाद में आदि में जगण है, उसके बाद तगण है, उसके बाद पुन जगण, और उसके बाद रगण क्रमश है। अत: यह वंशस्थ का उदाहरण है। इसके प्रत्येक पाद मे 12 वर्ण है। इस प्रकार सम्पूर्ण पद्य में 48 वर्ण है। पाद के अन्त में यति होती है।

24.2.6 तोटक

संस्कृत जगत में तोटक वृत्त कवियों को अत्यन्त प्रिय है।

लक्षण :- ''इह तोटकमम्बुधिसै: प्रथितम्।

व्याख्या- तोटक वृत्त जगती का ही कोई भेद है। यह समवृत्त छन्द है। अम्बुधि चार है। छन्दशास्त्र में अम्बुधिसै: का अर्थ है चार सगणों से युक्त होता है। वह तोटक नामक वृत्त होता है। अर्थात् जिस छन्द में चार सगण होते हैं। वह तोटक वृत्त होता है। इसके प्रत्येक पाद के

टिप्पणी

अन्त में यति होती है। इसके प्रत्येक चरण में 12 वर्ण तथा चारों पादों में कुल 48 वर्ण होते हैं।

उदाहरण में लक्षणसमन्वय -

।।ऽ, ।ऽ,।।ऽ,।।ऽ,	॥ऽ,॥ ऽ,॥ ऽ,॥ ऽ
जयराम सदासुखधम हरे,	**रधुनायक सायक चापधरे।**
॥ऽ, ॥ऽ, ॥ऽ,।।ऽ	।।ऽ,॥ ऽ,॥ ऽ,।।ऽ
भववा रणदा रणसिंह प्रभो,	**गुणसागर नागर नाथ विभो॥**

प्रस्तुत श्लोक के प्रत्येक पाद में सगण चतुष्ट्य है। इस प्रकार पादचतुष्टय समान लक्षण युक्त है क्योंकि यह समवृत्त हैं इसके प्रत्येक पाद में 12 अक्षर है। तथा चारों चरणों में कुल 48 वर्ण है। पाद के अन्त में यति है। यह वर्णिक छन्द है।

24.2.7 द्रुतविलम्बितम्-

संस्कृत साहित्य जगत में द्रुतविलम्बित वृत्त अत्यन्त प्रसिद्ध है। कालिदास आदि महाकवियों ने द्रुतविलम्बित वृत्त का आश्रय लेकर बहुत से श्लोकों की रचना की । यह समवृत्त हैं यह वृत्त श्रोताओं के कानों में माधुर्य पैदा करता है।

लक्षण- ''द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ''।

व्याख्या- यह वृत्त जगती का ही कोई भेद है। यह समवृत्त है। इसके प्रत्येक पाद में नभौ अर्थात् नगण एवं भगण होता है, फिर भरौ- अर्थात् भगण और रगण होता है। अर्थात् जिस वृत्त के प्रत्येकपाद में क्रमशः नगण, भगण, भगण और रगण होते हैं वह द्रुतविलम्बित वृत्त होता है इसके प्रत्येक पाद में बारह वर्ण होते हैं और चारों पादों में कुल 48 वर्ण होते है। तथा पाद के अन्त में यति होती है यह वर्णिक छन्द है।

उदाहरण में लक्षण समन्वय-

।।।, ऽ ॥,ऽ॥, ऽ।ऽ	॥ ।, ऽ ॥, ऽ । ।, ऽ । ऽ,
द्रुतगतिः पुरुषोधन भाजनं,	**भवति मन्दगतिश्च सुखोचितः।**
॥ ।, ऽ । ।, ऽ ॥, ऽ । ऽ	॥ ।, ऽ ॥,ऽ । ।, ऽ । ऽ
द्रुत विलम्बित खेलगति र्नृपः,	**सकलराज्यसुखं प्रियमश्नुते॥**

इस प्रकार श्लोक के प्रत्येक पाद के आदि में नगण है उसके बाद भगण तथा पुन भगण व उसके बाद रगण है। अतएव इस श्लोक में द्रुतविलाम्बित का उदाहरण गृहीत होता है। यह समवृत्त है इस श्लोक के प्रत्येक पाद मे 12 अक्षर है प्रत्येक चरण में 12 अक्षर है चारों चरणों में कुल 48 वर्ण है। पाद के अन्त में यति होती है। यह वर्णिक छन्द है। यह छन्द अत्यन्त सुन्दरमय है। अतएव द्रुतविलम्बित वृत्त का दूसरा नाम सुन्दरी है। इसके प्रत्येक पाद में अन्त में यति होती है इसका ही नामान्तर सुन्दरी है।

द्रुतविलम्बित का दूसरा उदाहरण है-

इतरपाफलानि यदृच्छया, वितर तानि सहे चतुराननं
अरसिकेषु कवित्वनिवेदनं, शिरसि मा लिख ना लिख मा लिख॥

प्रकृत श्लोक के द्वितीय एवं चतुर्थ पाद के अन्तिम अक्षर लघुस्वर युक्त है। परन्तु द्रुतविलम्बित छन्द के अन्तिम गण रगण होता हैं उसकी आकृति (ऽ। ऽ) होती है। अर्थात् रगण के अन्तिम अक्षर गुरू स्वर युक्त होता है। अतएव प्रकृत श्लोक द्रुतविलम्बित के उदाहरण से गण्य कैसे होता है। इसके उत्तर तो पादान्त में छन्द पूर्ति के लिए प्रयोजन वश लघु वर्ण को गुरूता से भी स्वीकार होता है। अर्थात् छन्द पूर्ति के लिए लघु गुरू विपरिणाम तो होता हैं अतएव प्रकृतश्लोक में भी छन्द पूर्ति के लिए पादान्त वर्ण का गुरूत्व ग्रहण होता है। अतएव प्रकृत श्लोक द्रुतविलम्बित वृत का भी उदाहरण होता है।

पाठगत प्रश्न 24.3

13. रथोद्धता वृत्त का लक्षण क्या है?
14. रथोद्धता वृत्त से रचित श्लोक में कितने अक्षर होते हैं?
15. रथोद्धता में यति कब होती है?
16. वंशस्थ छन्द का लक्षण क्या है?
17. वंशस्थ के प्रत्येक चरण में कितने वर्ण होते हैं?
18. तोटक वृत का लक्षण क्या है।
19. तोटक के प्रत्येक चरण में कितने वर्ण होते है?
20. द्रुतविलम्बित का लक्षण क्या है?
21. द्रुतविलम्बित में यति कब होती है?
22. द्रुतविलम्बित का दूसरा नाम क्या है?

24.2.8 भुजंगप्रयात

काव्यमार्ग में यह अत्यन्त लोकप्रिय हैं क्योंकि इस वृत से श्लोक रचना अत्यन्त सरल होती है। इसमें समगण होते हैं। अतएव सुनने में मधुरता की अनुभूति होती है।

लक्षण- भुजंगप्रयातं भवेद् यैरश्चतुर्भि:।

व्याख्या :- यह जगती का ही कोई भाग है। इस वृत के प्रत्येक चरण में चार यगण होते हैं इस वृत्त के पाद के अन्त में यति होती है। यह समवृत्त है अत: प्रत्येक पाद में समान लक्षण होते है। इसके प्रत्येक पाद में 12 वर्ण हैं और चारों चरणों में कुल 48 वर्ण होते हैं यह वर्णिक

छन्द है।

उदाहरण में लक्षणसमन्वय :

।ऽ ऽ,। ऽ ऽ,। ऽ ऽ, । ऽ ऽ,। ऽ ऽ, । ऽ ऽ,। ऽ ऽ,। ऽ ऽ
पुरः साधुवद्भाति मिथ्या विनीतः, परोक्षे करोत्यर्थनाशं हताशः।
। ऽ ऽ,। ऽ ऽ,। ऽ ऽ,। ऽ ऽ, । ऽ ऽ, । ऽ ऽ,। ऽ ऽ, । ऽ ऽ
भुजंग प्रयातो पमं यस्य चिन्तं, त्यजेत्ता दृशं दुश्चरित्रं कुमित्रम्।।

इस श्लोक के प्रत्येक चरण में चार यगण है। पादान्त में यति है। अतएव यह श्लोक भुगंजप्रयात के उदाहरण में गण्य है। यह समवृत्त है। इसके चारों पादों में समान लक्षण हैं प्रत्येक पाद में 12 और कुल 48 वर्ण है।

24.2.9 वसन्ततिलका

काव्य जगत में वसन्ततिलका वृत्त प्रसिद्ध है प्राय: सभी कवि इस वृत्त से काव्य रचने की इच्छा करते हैं यह सुनने में मधुर है जिससे काव्य सौन्दर्य बढ़ता है।

लक्षण– ''उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।

व्याख्या– यह वसन्ततिलका वृत्त शक्वरी का एक भेद है। जिस वृत के प्रत्येक चरण में तभजा अर्थात तगण, भगण और जगण, जगौ अर्थात् जगण एवं एक गुरू, और 'ग' अर्थात् अन्त में एक गुरू होता है अर्थात् जिस वृत्त के प्रत्येक चरण में क्रमशः तगण, भगण, जगण, जगण एवं अन्त में दो गुरूवर्ण हो वह वसन्ततिलका छन्द होता है। इस वृत के प्रत्येक पाद के अन्त में यति होती हैं यह सभी समवृत्त है अर्थात् प्रत्येक पाद में समान लक्षण होता हैं। इसके प्रत्येक पाद में 14 वर्ण होते है। और पादचतुष्ट्य में 56 वर्ण या अक्षर होते हैं।

उदाहरण में लक्षण समन्वय

ऽ ऽ ।,ऽ । ।,। ऽ ।,। ऽ ।, ऽ ऽ, ऽ ऽ ।, ऽ। ।,। ऽ ।,। ।, ऽ ऽ,
फुल्लं वसन्त तिलकं तिलकं वनाल्याः, लीलापरं पिककुलं कलमत्र, रौति।
ऽ ऽ।, ऽ। ।,। ऽ।,। ऽ ।, ऽ ऽ, ऽ ऽ।,ऽ ।।,।ऽ ।,। ऽ ।, ऽ ऽ,
वात्येष पुष्पसुरभिर्मलायाद्रि वातो, याताहरिः समधुरां विधिना हताः स्मः।

इस प्रकृत श्लोक के प्रति चरण में क्रमश तगण, भगण, जगण और पुनः जगण है उसके बाद दो गुरू वर्ण है। अतः यह श्लोक वसन्ततिलका वृत्त का उदाहरण है, यह समवृत्त है। प्रत्येक पाद में समान लक्षण है इसके प्रत्येक पाद में 14 वर्ण है और चारों चरणों में 56 अक्षर हैं इस श्लोक के पाद के अन्त में यति है।

वसन्ततिलका के बहुत से नामान्तर विद्यमान है जैसे इस कारिका से प्राप्त होता है–

सिंहोन्नतेयमुदिता मुनि काश्यपेन। उद्धर्षिणीति गदिता मुनि सैतवेन।
रामेण सेयमुदिता मधुमाधवीति।।

टिप्पणी

अर्थात् वसन्ततिलका का काश्यप के मत में सिंहोन्नता नाम है, सैवत के मत में उद्धर्षिणी नाम और राम के मत में माघवी नाम है। वसन्ततिलका वृत्त के नामान्तर को जानकर समझते है कि शक्वरी कितनी प्रसिद्ध थी।

24.2.10 मालिनी

लक्षण- ''ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोंकैः।

व्याख्याः- यह वृत्त अतिशक्वती का कोई भाग है। ननमयययुता अर्थात् दो नगण, एक भगण, दो यगण से युक्त होता है। अर्थात् जिस वृत्त के प्रत्येक चरण में क्रमशः नगण, नगण, मगण यगण एवं यगण हो वह मालिनी वृत के रूप में प्रसिद्ध हैं। यहां भोगी अर्थात् भोग आठ होते हैं और लोकै अर्थात् लोक सात होते हैं। अर्थात् इस वृत में आठवें एवं सातवें अक्षर के बाद यति होती है यह समवृत्त है अतः चारों चरणों में समान लक्षण होते है प्रत्येक चरण में 15 अक्षर है अतः चारों चरणों 60 अक्षर है।

उदाहरण में लक्षण समन्वय -

।। ।,।। ।, ऽऽ ऽ,।ऽऽ, । ऽऽ,	। ।।, ।।।, ऽऽ ऽ,। ऽ ऽ, । ऽ ऽ,
अतिविपुल ललाटं, पीवरोरः कपाटं,	**सुघटितदश नोष्ठं व्याघ्रतुल्य प्रकोष्ठम्।**
।।।, ।। ।, ऽ ऽ ऽ, । ऽ ऽ,। ऽ ऽ,	।। ।,।।।, ऽ ऽ ऽ,। ऽ ऽ,। ऽ ऽ,
पुरुष मशनि लेखाल क्षमणं वीरलक्ष्मी	**रतिसुरभिय शोभिर्मालिनी वाभ्युपैति।।**

प्रस्तुत श्लोक के प्रत्येक चरण में क्रमशः नगण, नगण, मगण, यगण एवं यगण है इसमें प्रथम यति आठ पर और द्वितीय यति सात पर हैं अतः यहा मालिनी छन्द है। इसके प्रत्येक चरण में 15 अक्षर और चारों पादों में 60 वर्ण है। समवृत्त होने से चारों पादों में समान लक्षण हैं।

24.2.11 शिखरिणी

लक्षणः- ''रसैः रूद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी।

व्याख्या- यह अत्यष्टी छन्द का कोई भाग है। जिस वृत्त के प्रत्येक चरण में यमनसभलाग अर्थात् यगण मगण, नगण सगण, भगण तथा लघु और गुरू होता है वह शिखरिणी छन्द के नाम से प्रख्यात होता है। रस छः होते है, रूद्र ग्यारह होते है, अर्थात् शिखरिणी के प्रत्येक चरण में क्रमशः यगण, मगण, नगण, सगण, भगण तथा अन्त में लघु और गुरू वर्ण होते है। इसमें 6 एवं 11 यति होती है। यह समवृत्त है अतः प्रत्येक चरण में समान लक्षण होते है उसके प्रत्येक पाद में 17 वर्ण होते है। चारों चरणों में कुल 68 वर्ण होते है।

उदाहरण में लक्षणान्वय-

। ऽ ऽ, ऽ ऽ ऽ,	। । ।, । । ऽ, ऽ । ।, । ऽ
यदा किच्चिद्ज्ञोऽहं	**द्विप इव मदान्धः समभवम्,**

। ऽ ऽ, ऽ ऽ ऽ, । । ।, । । ऽ, ऽ । ।, । ऽ

तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः॥

। ऽ ऽ, ऽ ऽ ऽ, । । ।, । । ऽ, ऽ । ।, । ऽ

यदा किं चित् किं चित् बुधजन सकाशादवगतम्,

। ऽ ऽ, ऽ ऽ ऽ, । । ।, । । ऽ, ऽ । ।, । ऽ

तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो में व्यय गतः॥

इस श्लोक के प्रत्येक चरण में क्रमशः यगण, मगण, नगण, सगण भगण लघु तथा गुरू होते हैं अतः इस श्लोक में शिखरिणी छन्द हैं छठे एवं ग्यारहवे अक्षर के बाद यति है। यह समवृत्त है अतः पादचतुष्ट्य समान लक्षणों से युक्त है। इस श्लोक के प्रत्येक चरण में 17 वर्ण है तथा सम्पूर्ण श्लोक में 68 अक्षर है।

24.2.12 मन्दाक्रान्ता

लक्षणः- ''मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैर्म्भौ नतौ ताद् गुरू चेत्''

व्याख्याः- मन्दाक्रान्ता वृत्त अत्यष्टी छन्द का कोई भाग है। जिस वृत्त के प्रत्येक चरण में **क्रमशः** मगण भगण होते हैं उसके बाद नतौ अर्थात् नगण व तगण होते हैं उसके बाद तात् अर्थात् तगण व दो गुरू वर्ण हो उसे मन्द्राक्रान्ता कहते हैं। यति के लिए कहते है जलाधिषडगैः अर्थात् छन्द शस्त्र में जलधिः समुद्र चार और नगैः से सात संख्या का बोध होता है। इस प्रकार मन्दाक्रान्ता छन्द के प्रत्येक पाद में क्रमश मगण, भगण, नगण, दो तगण, और अन्त में दो गुरू होते हैं तथा चार छः, सात पर यति होती है। यह समवृत्त है इसके प्रत्येक चरण में 17 वर्ण तथा कुल 68 वर्ण होते है।

उदाहरण में लक्षणान्वय-

ऽ ऽ ऽ, ऽ । ।,। ॥, ऽ ऽ । ,ऽ ऽ । , ऽऽ

कश्चित्कान्ताविरह गुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्ताः।

ऽ ऽऽ, ऽ॥,।॥, ऽऽ।, ऽऽ। ऽऽ

शापेना स्तंगमितमहि मावर्ष भेग्येण भर्तुः

ऽऽ ऽ, ऽ ॥,। । ।,ऽ ऽ। , ऽ ऽ।,ऽऽ

यक्षश्चक्रे जनक तनया स्नान पूर्णोद केषु।

ऽ ऽ ऽ, ऽ॥,। ॥,ऽ ऽ।, ऽ ऽ।,ऽऽ

स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं राम गिर्याश्रमेषु॥

इस श्लोक के प्रत्येक चरण में क्रमशः मगण भगण, नगण तगण पुनः तगण और अन्त में दो गुरू वर्ण हैं इस में चौथे वर्ण के बाद, छठे अक्षर के बाद और सातवें अक्षर के बाद यति होती हैं अतः इस श्लोक में मन्दाक्रान्ता छन्द का लक्षण अन्वित होता है यह समवृत्त छन्द है इसके प्रत्येक चरण में 17 और कुल 68 वर्ण है।

टिप्पणी

24.2.13 शार्दूलविक्रीडित

काव्य मार्ग में शार्दूलविक्रीडित अत्यन्त प्रसिद्धतम छन्द हैं संस्कृत जगत में इस छन्द से अगणित श्लोक है।

लक्षणः- ''सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्।''

व्याख्याः-यह वृत्त अतिधृति का कोई भेद हैं जिस के प्रति चरण में एक गुरू के साथ **मसजसतताः** अर्थात् **मगण, सगण, जगण, सगण,** और दो तगण होते हैं। और सूर्य बारह होते है एवं अश्व सात होते हैं अर्थात् शार्दूलविक्रीडित छन्द के प्रत्येक चरण में क्रमश मगण, सगण, जगण, सगण, दो तगण और अन्त में गुरूवर्ण होता है बारहवें एवं सातवें अक्षर के बाद यति होती हैं यह समवृत्त हैं अतः चारों पाद समान होते हैं इसके प्रत्येक पाद में 19 अक्षर होते हैं सम्पूर्ण छन्द में 76 अक्षर होते हैं।

उदाहरण में लक्षण समन्वय-

ऽ ऽ ऽ, । । ऽ, । ऽ।, ॥ ऽ , ऽ ऽ।, ऽ ऽ।, ऽ

या कुन्देन्दुतुषार हार धवला या शुभ्रवस्त्रवृता,

ऽ ऽ ऽ,। । ऽ,। ऽ ।,। ।ऽ , ऽ ऽ।, ऽ ऽ ।, ऽ

या वीणा वरदण्डमण्डितकरा याश्वेतपद्मासना।

ऽ ऽ ऽ , ॥ ऽ,। ऽ।, ॥ ऽ, ऽ ऽ।,ऽऽ। ,ऽ

या ब्रह्माच्युतशंकरप्रभृति भिर्देवैः सदा वदिन्ता,

ऽ ऽऽ, ॥ ऽ, । ऽ ।,॥ ऽ, ऽ ऽ ।, ऽ ऽ ।, ऽ

सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा॥

इस श्लोक के प्रति चरण में क्रमशः मगण, सगण, जगण, पुनः सगण, उसके बाद दो तगण तथा अन्त में एक गुरू वर्ण हैं तथा 12वें 7वें अक्षर के बाद यति हैं। अतः यहां शार्दूलाविक्रीडित छन्द है। समवृत्त होने से चारों पाद समान लक्षण युक्त हैं इसके प्रत्येक चरण में 19 तथा चारों चरणों में कुल 76 अक्षर है। यह वर्णिक छन्द हैं।

पाठगतप्रश्न 24.4

23. भुजंगप्रयात का लक्षण क्या है?
24. भुजंगप्रयात रचित श्लोक में कितने अक्षर होते है?
25. वसन्ततिलका छन्द का लक्षण क्या है।
26. वसन्ततिलका छन्द के प्रति पाद में कितने अक्षर हैं?
27. काश्यप के मत में वसन्ततिलका का क्या नाम है?

28. मालिनी वृत का लक्षण क्या है?

29. मालिनी के प्रत्येक पाद में कितने अक्षर है?

30. शिखरिणी छन्द का लक्षण क्या है?

31. शिखरिणी के प्रत्येक पाद में कितने अक्षर हैं?

32. मन्दाक्रान्ता का लक्षण क्या है?

33. शार्दूलविक्रीडित का लक्षण क्या है?

पाठासार

संस्कृत साहित्य जगत में छन्द का प्रचुर प्रयोग दिखाई देता है। शकुन्तला आदि लौकिक काव्य में तथा वैदिक साहित्य में भी छन्द का प्रयोग हैं इस पाठ के प्रारम्भ में मात्रिक छन्द आर्यावृत्त का वर्णन किया गया हैं। आर्या के लक्षण उदाहरण एवं यति नियम को कहा गया है। मात्रिक छन्द का वर्णन करके अत्यन्त प्रसिद्ध इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा वर्णन हैं जिस वृत के प्रतिचरण में दो तगण एक जगण के साथ अन्त में दो गुरू वर्ण हो वह इन्द्रवज्रा छन्द होता है। पाद में अन्त में यति होती है। उपेन्द्रवज्रा में क्रमशः जगण तगण जगण और अन्त दो गुरू वर्ण होते हैं। शालिनी छन्द के प्रत्येक चरण में प्रथम मगण उसके बाद दो तगण तथा अन्त में दो गुरू वर्ण होते हैं चौथे व सातवें अक्षर के बाद यति होती है। रथोद्धता छन्द के प्रति पाद में क्रमश रगण, नगण और पुनः रगण तथा अन्त में लघु एवं गुरू वर्ण होकर ग्यारह वर्ण होते हैं तथा पाद के अन्त में यति होती हैं उसके बाद वंशस्थ छन्द का लक्षण कहते है जिस वृत्त के प्रत्येक पाद में जगण, तगण, जगण और रगण होते हैं वह वंशस्थ होता है। तोटक वृत के प्रत्येक चरण में चार सगण होते हैं तोटक के पाद के अन्त में यति होती है। द्रुतविलम्बित छन्द के प्रति चरण में क्रमशः नगण भगण भगण एवं रगण होते है। इसके प्रत्येक चरण में बारह वर्ण होते हैं चार यकारों अर्थात् जिस छन्द में चार यगण हो उसे भुगंजप्रयात कहते हैं जिस छन्द के प्रति चरण में क्रमश तगण, भगण, दो जगण और अन्त में दो गुरू वर्ण हो उसे वसन्ततिलका कहते हैं। इसके पाद में अन्त में यति होती है। उसके बाद मालिनी का लक्षण करते है जिस वृत के प्रति चरण में क्रमण दो नगण, तगण, और दो यगण होते हैं उसे मालिनी कहते हैं। जिस छन्द के प्रतिचरण में क्रमश यगण मगण, नगण सगण भगण और अन्त में एक लघु और एक गुरू होता है वह शिखरिणी होता है। इसमें छठे ग्यारहवें अक्षर के बाद यति होती है। मन्दाक्रान्ता छन्द के प्रत्येक पाद में क्रमश मगण, भगण, नगण, तगण, पुनः तगण तथा अन्त में दो गुरू वर्ण होते हैं। और जिस छन्द के प्रति चरण में क्रमश मगण, सगण, जगण पुनः सगण उसके बाद दो तगण है उसे शार्दूलविक्रीडित छन्द कहते हैं। इसमें 12वें एवं 7वे अक्षर पर यति होती हैं इस प्रकर संक्षेप में छन्दों की चर्चा प्रस्तुत की गई है।

आपने क्या सीखा

- विविध छन्दों के लक्षण एवं उदाहरणों को जाना।
- काव्यों में छन्दों को पहचानना जाना।
- छन्दों के भेद उपभेदों का ज्ञान प्राप्त किया।

पाठान्त प्रश्न

1. उदाहरण सहित आर्या छन्द का वर्णन कीजिए।
2. इन्द्रवज्रा छन्द का लक्षण व उदाहरण लिखिए।
3. उपेन्द्रवज्रा छन्द का लक्षण व उदाहरण लिखिए।
4. शालिनी छन्द का लक्षण व उदाहरण लिखिए।
5. रथोद्धता छन्द का लक्षण व उदाहरण लिखिए।
6. वंशस्थ छन्द का लक्षण व उदाहरण लिखिए।
7. तोटक छन्द का लक्षण व उदाहरण लिखिए।
8. भुजंगप्रयात छन्द का लक्षण व उदाहरण लिखिए।
9. वसन्ततिलका छन्द का लक्षण व उदाहरण लिखिए।
10. द्रुतविलम्बित छन्द का लक्षण व उदाहरण लिखिए।
11. मालिनी छन्द का लक्षण व उदाहरण लिखिए।
12. शिखरिणी छन्द का लक्षण व उदाहरण लिखिए।
13. मन्दाक्रान्ता छन्द का लक्षण व उदाहरण लिखिए।
14. शार्दूलविक्रीडित छन्द का लक्षण व उदाहरण लिखिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

24.1

1. मात्रिक छन्द।
2. जगण।

3. विषमवृत।

4. त्रिशंत् (30)।

5. सप्तविंशति (27)।

24.2

6. स्यादिन्द्रवज्रा यदितौ जगौ गः।

7. ग्यारह।

8. समवृत्त।

9. उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ।

10. ग्यारह।

11. शालिन्युक्ता म्तौ तगौ गोखब्लिलोकैः।

12. ग्यारह।

24.3

13. रान्नराविह रथोद्धता लगौ।

14. 44।

15. पाद के अन्त में ।

16. जतौ तु वंशस्थ मुदीरितं जरौ।

17. 12।

18. इह तोटकमम्बुधिसैः प्रथितम्।

19. 12।

20. द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ।

21. पाद के अन्त में ।

22. सुन्दरी।

24.4

23. भुजंगप्रयातं भवेद्यैश्चतुर्भिः।

24. 48।

25. उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।

26. 14।

27. सिंहोन्नता।

28. ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः।

29. 15।

30. रसैः रूद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी।

31. 17 ।

32. मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैम्भौं नतौ ताद् गुरू चेत्।

33. ''सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्।

25

शब्दार्थालंकार-शब्दालंकार

मानव सदैव सौन्दर्य के पूजक होते हैं। कवियों ने प्राचीनकाल से ही अलंकारादि का प्रयोग किया था। इतिहास पुराणादि के समान अलंकारशास्त्र भी अति प्राचीन है। कवियों ने जब पद्यादि की सर्जना की तब ही स्वत: अलंकारादि कृतियों में समाहित हो गये। वैदिक साहित्य में भी अलंकारशास्त्र का प्रयोग विद्यमान है। जैसे - ऋग्वेद के उषा सूक्त में उषा देवी के वर्णन के अवसर में उपमादि अलंकार का प्रयोग दिखाई देता है। ऋग्वेद में अतिश्योक्ति अलंकार का प्रयोग देखा जाता है।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्य: पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीती।।

यहाँ अलंकार कवि वाणी से स्वत: ही आया है न कि प्रयत्न से। शरीर से लावण्य कभी भी पृथक् नहीं होता उसी प्रकार शब्दार्थमय काव्य शरीर से अलंकार पृथक् नहीं होता। जैसे निश्चय ही वलय कुण्डलादि मानव देह की शोभा को सम्पादित करने वाले अलंकार शब्द से कहे जाते हैं उसी प्रकार अनुप्रास रूपाकादि शब्द और अर्थ की शोभा को सम्पादित करते हुए रस को उपकृत करते हैं। अतएव अनुप्रास रूपाकादि अलंकार पद से वाच्य होते हैं। अलंकार ही शब्दार्थमय काव्य की शोभा को बढ़ाते हैं। जैसे आग में उष्णत्व धर्म होता है वैसे ही अलंकार का सौन्दर्य धर्म होता है। अतएव वामन ने कहा है - ''सौन्दर्यमलंकार:''। जयदेव कहते है कि आग में उष्णराहित्य कदापि संभव नहीं है उसी प्रकार काव्य भी अलंकार रहित कदापि नहीं होता। जयदेव ने कहा है -

अंगीकरोति य: काव्यं शब्दार्थावनलंकृती।
असौ न मन्यते कस्मात् अनुष्णमनलंकृती।।

प्रस्तुत पाठ में हम कुछ अलंकारों के लक्षण, उनका प्रयोजन, अलंकारों के भेद आदि विषय की संक्षेप में समालोचना करेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे :

- अलंकारों के प्रयोजन को जान पाने में;
- अलंकार के भेद-उपभेद समझ पाने में;
- शब्दालंकार को पद्यों से पहचान पाने में;
- शब्दार्थलंकार में विद्यमान अलंकार को जान पाने में;
- कवि निर्मित श्लोक में अलंकारों का निर्णय कर पाने में;
- स्वयं अलंकारों का प्रयोग करके श्लोक रचना कर पाने में;
- उदाहरण में लक्षण का समन्वय कर पाने में और;
- श्लोकादि में अलंकार चमत्कार को समझ पाने में।

25.1 अलंकार लक्षण

लोक प्रसिद्ध यह अलंकार शब्द अलम् उपपदपूर्वक 'कृ' धातु से 'घञ्' प्रत्यय करने पर बनता है। अलंकार विषयक शास्त्र को अलंकारशास्त्र कहा जाता है। अलंकार किसे कहते है इस विषय में दण्डी ने कहा है -**काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते। अलंक्रियते अनेन इति अलंकार:** यह वामन आनन्दवर्धन आदि ने परिभाषित किया है। मम्मटाचार्य के मत में शब्दार्थमय काव्यशरीर के सौन्दर्यवर्धक उपमादि अलंकार होते हैं। जैसे -

'उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित्।
हारादिवदलंकारास्ते अनुप्रासोपमादय:॥

अलंकार प्रथमतया वाच्य लक्ष्य और व्यंग्यार्थ की शोभा बढ़ाते हैं। उसके बाद वाच्यलक्ष्यदि अर्थातिशयमुख से संभावित मुख्य रस को उपस्थित करते हैं। लोक में भी शुरू में अलंकार कण्ठादि अंगों की शोभा बढ़ाते हैं। उसके बाद अलंकार कण्ठादि अंगों के उत्कर्षाधन के द्वारा शरीर को उपस्थित करते हैं। पण्डितराज जगन्नाथ अपने ग्रन्थ रसगंगाधर में अलंकार का निर्देश करते हैं - ''अथास्य प्रागभिहित लक्षणस्य काव्यात्मनो व्यंग्यस्य रमणीयता प्रयोजका: निरूप्यन्ते।'' विश्वेश्वर पण्डित के मत में तो अलंकार रसोपकारक होता है। अलंकार अर्थद्वारा रस का उपकार करता है। जैसा कि अलंकार कौस्तुभ में कहा है- **''तं विना शब्दासौन्दर्य मपि नास्ति मनोहरम्।''**

''अर्थालंकार रहिता विधेवेव सरस्वती॥''

कविराज विश्वनाथ साहित्यदर्पण के दशमोल्लास में अलंकार का वर्णन करते हुए कहते हैं -

टिप्पणी

शब्दार्थयोरास्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनः।
रसादीनुपकुर्वन्तोऽलङ्गारास्तेऽङ्गदादिवत्।।

जैसे केयूरादि शरीरशोभातिशय से आत्मा को उपकृत करते हैं। उसी प्रकार अनुप्रास, उपमादि अलंकार शब्दार्थ शोभातिशय से काव्यात्मभूत रसादि के उपकारक होते हैं। अलंकार अस्थिर होते हैं। अतएव उनकी गुणवत् आवश्यक स्थिति है। अर्थात् गुण भी उत्कर्षक होते हैं किन्तु वे गुण रस के स्थिर धर्म स्वरूप विशेष होते हैं।

अलंकार शब्द और अर्थ के अस्थिर धर्म है और शब्दार्थ द्वारा रस को उत्कर्ष करते हैं। यह ही अलंकारों का प्रयोजन है कि शब्दार्थ द्वारा रसादि को उपकृत करते हैं। अलंकार शब्द दो प्रकार से निष्पन्न होता है। अलंकृतिः अलंकार यह व्युत्पत्ति भाव पक्ष में है, अलंक्रियते अनेन इति अलंकार यह व्युत्पत्ति करण पक्ष में है।

25.2 अलंकारों के प्रकार

प्रायः अलंकार दो प्रकार का होता है। शब्दालंकार और अर्थालंकार। कुछ की नीति में उभयालंकार भी होता है। अनुप्रास आदि शब्दालंकार और उपमारूपकादि अर्थालंकार हैं। पुनरूक्तवदाभासालंकार शब्दार्थालंकार अर्थात् उभयलंकार होता है। शब्दालंकार में शब्द की ही प्रधानता होती है और अर्थालंकार में अर्थ की प्रधानता होती है।

जो अलंकार शब्दाश्रित हैं वे शब्दालंकार कहे जाते हैं। ''शब्दपरिवृत्त्यसहत्वम्'' जहाँ होता है अर्थात् जो अलंकार शब्द परिवर्तन को सहन नहीं करते, प्रयुक्त शब्द के स्थान पर पर्यायवाचक शब्द के प्रयोग को नहीं सहन करते है। उस अलंकार में शब्द की सत्ता होती है। जब शब्द परिवर्तन होता है तब अलंकार भी नष्ट हो जाता है। अतः इस प्रकार की स्थिति जहाँ होती है वे शब्दालंकार होते हैं। जो अलंकार अर्थाश्रित होते हैं उनको अर्थालंकार कहते हैं। ''शब्दपरिवृत्तिसहत्वम्'' जहाँ होता है अर्थात् जो अलंकार शब्द परिवर्तन को सहन करते है, प्रयुक्त शब्द के स्थान पर पर्यायवाचक शब्द के प्रयोग का सहन करते हैं। अर्थालंकार में अर्थ की सत्ता होती है। जब अर्थ परिवर्तन होता है तब ही अलंकार नष्ट नहीं होता है। अतः इस प्रकार की स्थिति जहाँ होती है वहाँ अर्थालंकार होते हैं।

वस्तुतः शब्दालंकार ध्वनि अर्थात् नाद का अलंकार होता है उसके सुनने से आनन्द पैदा होता है। अर्थालंकार अर्थ का अलंकार होता है। शब्दालंकार शरीर होता है। अर्थालंकार उसका चिदानन्दस्वरूप होता है। शब्दालंकार मानव के मन में रूप का आलोक प्रदान करता है। अर्थालंकार चिन्मयरूप से चित्त को आलोकित करता है। शब्दालंकार में शब्द का परिवर्तन संभव नहीं है, परन्तु अर्थालंकार में तो शब्द का परिवर्तन संभव है।

शब्दालंकार, अर्थालंकार और शब्दार्थालंकार (उभयालंकार) भेद से अलंकार तीन प्रकार का होता है।

टिप्पणी

25.3 अलंकार का प्रयोग

अलंकार सौन्दर्य है। सुन्दर वस्तु जहाँ होती है वहाँ पर हमारे नेत्र दौड़ते हैं। सौन्दर्यपूर्ण वस्तु के दर्शन से हमारे नेत्रों को आनन्द प्राप्त होता है। सौन्दर्यपूर्ण भोजन को स्वीकार करने से मन में आनन्द पैदा होता है। उसी प्रकार सौन्दर्यपूर्ण काव्य के पढ़ने से भी मन में आनन्द उत्पन्न होता है। परमार्थत: उक्ति वैचित्र्य अलंकार होता है। वस्तुत: यदि साक्षात् वस्तु को कहते हैं तो वह कथामात्र है उससे चमत्कार उत्पन्न नहीं होता। जैसे - ''मम नाम देवदत:। अहं प्रतिदिनं प्रात: विद्यालयं गच्छामि'' इस प्रकार के वाक्य साक्षात् अर्थ का बोध कराते हैं। इस वाक्य में चमत्कार दिखाई नहीं देता है। चमत्कार विशिष्ट वाक्य नहीं है तो काव्य भी नहीं होता। यहाँ चमत्कार विशिष्ट वाक्य के अभाव से लोगों को आनन्द नहीं होता। उक्तिवैचित्र्य है तो उससे आनन्द होता है।

वामन ने काव्यालंकार सूत्र के आदिसूत्र में कहा है - ''काव्यं ग्राह्यमलंकारात्''। जो कुछ भी हमारे ग्राह्य होता वह काव्य है। कुन्तकाचार्य का मत है कि अलंकार की काव्यता होती है। तो यह निश्चय काव्य शरीरभूत शब्दार्थ के लोकोत्तर रमणीयत्व निष्पादक राजमार्ग का नाम ही अलंकार होता है। कोई महिला अलंकार को धारण करती है तो वह अतीव सुन्दरी प्रतीत होती है। उसी प्रकार काव्य में अलंकार होते हैं तो वह काव्य अत्यन्त प्रिय होता है। अलंकार जैसे शरीर के सौन्दर्य को बढ़ाता है वैसे ही शब्दालंकार और अर्थालंकार काव्य शरीर के सौन्दर्य को बढ़ाते हैं। उक्तिवैचित्र्य नहीं है तो वह काव्य ग्राह्य नहीं होता है। 'चन्द्र इव मुखम्' यह उपमा अलंकार का उदाहरण है। सामान्य अर्थ होता है कि चन्द्रमा में जैसा सौन्दर्य है वैसा ही सौन्दर्य मुख में भी है। इस वाक्य में साक्षात् वाक्यार्थ विद्यमान है। इस कारण उक्तिवैचित्र्य और गूढ़ार्थ के अभाव से इस वाक्य में चमत्कार नहीं है। अतएव काव्यत्व से ग्राह्य नहीं होता है। 'चन्द्र: इव मुखम्' यहाँ सौन्दर्य अर्थ गुप्तरूप से विद्यमान है। इस वाक्य में गूढ़ार्थ और उक्तिवैचित्र्य के विद्यमान होने से चमत्कार विलास है। अतएव इस वाक्य को सुनकर लोगों के मन में आनन्द उत्पन्न होता है। अत: वामन ने कहा। अलंकारयुक्त काव्य से क्या फल है तब कहते है - ''काव्यं सत् दृष्टार्थाखदृष्टार्थं प्रीति कीर्तिहेतुत्वात्।''

सत्काव्य हमारे आदरणीय हैं क्योंकि सत् काव्य को पढ़ने से प्रीति उत्पन्न होती है। उसका दृष्ट प्रयोजन है। पुन: सत्काव्य के पढ़ने से कीर्ति होती है। यह उसका अदृष्ट प्रयोजन है। भामह के मत में काव्य में अलंकार प्रधान ही होते हैं। अलंकार ही काव्य की आत्मा है। आत्मा के बिना शरीर व्यर्थ होता है। वैसे ही अलंकार के बिना काव्य भी व्यर्थ होता है।

पाठगत प्रश्न 25.1

1. अलंकार शब्द का भावसाधन व्युत्पत्ति से क्या विग्रह है?
2. अलंकार शब्द का करणसाधन व्युत्पत्ति से क्या विग्रह है?
3. दण्डी के मत में अलंकार का लक्षण क्या है?

4. प्राय: अलंकार कितने प्रकार के हैं?
5. शब्दालंकार का एक उदाहरण लिखिए।
6. अर्थालंकार का एक उदाहरण लिखिए।
7. किसके मत में काव्य की आत्मा अलंकार है?
8. भामह के मत में काव्य की आत्मा कौन है?
9. मम्मटानुसार अलंकार का लक्षण क्या है?
10. विश्वनाथ के अनुसार अलंकार का लक्षण क्या है?

25.4 शब्दार्थालंकार

कहीं पर शब्द और अर्थ दोनों का ही सन्निवेश विशेष विचित्रता से चमत्कार देखा जाता है। उन स्थलों में शब्द और अर्थ दोनों का ही चमत्कार विधान होने से शब्दार्थ या उभयालंकारता स्वीकार की जाती है। यहाँ शब्द और अर्थ दोनों की प्रधानता होती है। शब्द को परिवर्तन समर्थ होता है। काव्य मार्ग में पुनरूक्तवदाभास नामक एक ही अलंकार देखा जाता है।

उभयालंकार की विशेषताएँ -

1. शब्द और अर्थ की प्रधानता देखी जाती है।
2. अर्थ का परिवर्तन सहन नहीं होता।
3. शब्द का परिवर्तन समर्थ होता है।
4. काव्यमार्ग पुनरूक्तवदाभास नामक एक ही अलंकार है।

25.4.1 पुनरूक्तवदाभास

साहित्यदर्पणग्रन्थ में कविराज विश्वनाथ इसका लक्षण कहते हैं

लक्षण - **आपाततो यदर्थस्य पौनरूक्त्येन भासनम्।**
पुनरुक्तवदाभास: स भिन्नाकार शब्दग:॥

अन्वय: - आपातत: यत् अर्थस्य पौनरुक्त्या अवभासनं भिन्नाकारशब्दग: स पुनरुक्तवदाभास अलंकार स्यात्।

शब्दार्थ: - **आपातत:** = श्रवणमात्र से, यत् = जो, अर्थस्य = अर्थ का, पौनरुक्त्या = पुन उक्ति के माधयम से, अवभासनम् = प्रतीति, भिन्नाकारशब्दग: = भिन्न आकृति से शब्दगत, **स:** = वह पदवाच्य, पुनरुक्तवादाभास = पुनरुक्तवदाभास नामक:, अलंकार होता है।

टिप्पणी

सामान्यार्थः - किसी वाक्य में प्रयुक्त भिन्नाकृति शब्द समूह के श्रवण मात्र से किसी समान अर्थ की प्रतीति होती है। वह पुनरुक्ति कही जाती है। परन्तु सम्यक्रूप से वाक्यार्थ के पर्यालोचन करने के बाद किसी भिन्न अर्थ की प्रतीति होती है वह ही पुनरुक्तवदाभास अलंकार होता है। पुनरुक्त के समान आभासित होता है न कि वस्तुगत पुनरुक्ति। अर्थात् सामान्यतया भिन्न आकृति से युक्त शब्द को देखने से तो समान अर्थ है यह प्रतिभासित होता है परन्तु जब शब्दों के अर्थों के विषय में सम्यक् रूप से आलोचना की जाती है तब कुछ भिन्न अर्थ प्रतीत होता है। अतएव पुनः उक्ति के समान आभासित होता है न कि वस्तुगति से पुनरूक्ति दोष है। इस प्रकार के वाक्य कथन से चमत्कार उत्पन्न होता है जिससे काव्य का सौन्दर्य बढ़ता है। इस अलंकार का नामानुसार ही लक्षण है।

उदाहरण में समन्वय - **भुजंगकुण्डली व्यक्तशशिशुभ्रांशुशीतगुः।**
जगन्त्यपि सदापायादव्याच्चेतोहरः शिवः॥

श्लोकार्थ - सर्प जिसका अलंकार, कर्पूर के समान शुभ्र किरण से युक्त, चन्द्रमा जिसके आश्रय में शोभायमान है, ऐसे शिव विपदा ग्रस्त इस संसार की रक्षा करें।

इस श्लोक में भुजंगकुण्डलादि शब्दों का भिन्नाकृति है। परन्तु भुजंग कुण्डलादि शब्दों की भिन्नाकृति होने पर आपात मात्र से सर्प यह समान अर्थ आता है। क्योंकि इन दोनों शब्दों का लोक प्रसिद्ध अर्थ सर्प है। अतएव शब्द के श्रवण मात्र से ही पुनरुक्ति भ्रम पैदा होता है। किन्तु सम्यक् रूप से समालोचना के बाद भिन्नार्थक प्रतीत होते हैं। पर्यालोचना के बाद भुजंग रूप कुण्डल है जिसका यह अन्वयार्थ आता है। इसी प्रकार शशी, शुभ्रांशुः और शीतगु इन तीन शब्दों का चन्द्रमा यह समान अर्थ सुना जाता है। इसलिए शब्दों के सुनने मात्र से भ्रमवश पुनरुक्तिदोष होता है। परन्तु वाक्यार्थ के पर्यालोचन से ज्ञात होता है कि शशी शब्द का अर्थ कर्पूर, शुभ्रांशु शब्द का श्वेत किरण तथा शीतगु शब्द का अर्थ चन्द्रमा होता है। अतः पुनरुक्तिदोष नहीं है। (सदा) पायात् और अव्यात् इन दोनों क्रियापदों का रक्षा अर्थ होता है इसलिए श्रवणमात्र से समान अर्थ आभास से पुनरुक्ति दोष होता है। किन्तु सम्यक् वाक्यार्थालोचना करने पर अपायात् अव्यात् यह विच्छेद होता है। अपाय शब्द का अर्थ मंगल होता है। अव्यात् का रक्षा अर्थ होता है। अतः पुनरुक्ति भ्रम नहीं होता। इस प्रकार उक्त शब्द के प्रथमदृष्टि पुनरुक्ति दोष होता है किन्तु पर्यायलोचन करने पर भिन्नार्थत्व प्रतीत होती है। अतः यहाँ पुनरुक्तक्दाभास अलंकार है।

शब्दालंकार में शब्द की प्रधानता होती है। शब्दालंकार में शब्द परिवर्तन असह्य होता है और शब्दार्थालंकार में शब्द परिवर्तन सह्य होता है। जैसे भुजंगकुण्डलादिशब्द के स्थान हर शिव यह शब्द प्रयोग समर्थ होता है। अतः यहाँ शब्दार्थ/उभयलंकार है।

25.5 शब्दालंकार

जहाँ श्रुतिमाधुर्य शब्दों का सन्निवेश विशेष से सम्पादित किये जाते हैं। वहाँ शब्दालंकार स्वीकार किया जाता है। मूलतः शब्दालंकार में वर्ण, पद और वाक्य की प्रधानता देखी जाती है। अतएव शब्दालंकार वर्णध्वनि, पदध्वनि और वाक्यध्वनि होता है। मूलरूप से अनुप्रास में

वर्णध्वनि है। यमक वक्रोक्ति और श्लेष आदि में पदध्वनि होती है। सर्व यमक में वाक्य ध्वनि होती है। शब्दालंकार में शब्द की प्रधानता होती है।

विशेषताएँ

1. शब्दालंकार में शब्द की प्रधानता होती है।
2. शब्दालंकार में वर्ण एवं पद की भी प्रधानता होती है।
3. शब्दालंकार में शब्द का परिवर्तन कदापि स्वीकार नहीं है।
4. शब्दालंकार में शब्दों के ही सन्निवेश से चमत्कार होता है।
5. शब्दालंकार में वर्णध्वनि, पदध्वनि और वाक्यध्वनि होता है।

25.5.1 अनुप्रास

लक्षण - कविराज विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में अनुप्रास का लक्षण कहा - ''अनुप्रासः शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत्''

अन्वयः - स्वरस्य वैषम्ये अपि यत् शब्दसाम्यं सः अनुप्रासः।

सामान्यार्थः - स्वर के भेद होने पर भी सदृश व्यंजन वर्ण की आवृत्ति अनुप्रासालंकार पद से वाच्य होता है। स्वर की समानता होने पर कोई चमत्कार पैदा नहीं होता है परन्तु व्यंजन वर्ण की समानता होने पर चमत्कार होता है। अतः अनुप्रास अलंकार निर्दिष्ट है। वर्ण की या वर्णसमूह की पुनः पुनः आवृत्ति होती है तो अनुप्रास अलंकार उत्पन्न होता है। केवल ध्वनि साम्य अलंकार नहीं होता है अपितु रस, रसाभास, भाव और भावाभास के उपकारकता से शब्दसाम्य होता है तो अनुप्रासालंकार उत्पन्न होता है।

अनुप्रास के भेद - अनुप्रास पाँच प्रकार का होता है - (1) छेकानुप्रास, (2) वृत्त्यानुप्रास, (3) श्रुत्यानुप्रास, (4) अन्त्यानुप्रास, (5) लाटानुप्रास।

(1) छेकानुप्रास -

लक्षण - अनुप्रास अलंकार का एक भाग छेकानुप्रास होता है उसका लक्षण है - ''छेको व्यंजन संघस्य सकृत्साम्यमनेकधा''

अन्वय - व्यंजन संघस्य सकृत् अनेकधा साम्यं छेकः।

सामान्यार्थ - अनेक व्यंजन वर्णों का स्वरूपत और क्रमशः एक बार सादृश्य होता है तो छेकानुप्रास अलंकार होता है। संघ बहुतो के समूह को कहते है। एक या दो वर्णों के मेल से अनुप्रास नहीं होता है जैसे - 'घृतच्युतांकुर' में तकार की दो बार सादृश्य में भी छेकानुप्रास नहीं होता। छेक शब्द का सामान्य अर्थ 'रसिक' होता है। रसिकजन के ही वाक्य में यह अलंकार प्रयुक्त होता है। इसलिए इसका नाम छेकानुप्रास है।

टिप्पणी

उदाहरण - **आदाय वकुल गन्धानन्धीकुर्वन् पदे पदे भ्रमरान्।**
अयमेति मन्दं मन्दं कावेरीवारिपावनः पवनः॥

श्लोकार्थ - कावेरी के जल स्पर्श से पवित्र बकुल की गन्धग्राही वायु पद पर मोहग्रस्त करके मन्द-मन्द आगे बह रही है।

यहाँ गन्धान्धी में संयुक्तवर्णगन्ध की दो बार आवृत्ति हुई, कावेरीवारि में वकार एवं रकार की दो बार आवृत्ति है, पावन, पवन में पकार, वकार एवं नकार की दो बार आवृत्ति हुई। इस श्लोक में स्वरूप एवं क्रम दोनों प्रकार से आवृत्ति हुई है। अतएव छेकानुप्रास अलंकार है।

(2) वृत्त्यानुप्रास -

लक्षण - **अनेकस्यैकधा साम्यम् सकृद्वाप्यनेकधा अनेकधा।**
एकस्य सकृद् अय्येष वृत्त्यानुप्रास उच्यते।

शब्दार्थ - काव्य में बहुत से व्यंजनों का, एकध = केवल स्वरूप से, असकृत् = बार-बार, **अनेकध** = स्वरूपानुसार और क्रमानुसार से (वर्ण का पूर्वपर के क्रम से), एकस्य = एक व्यंजन का, सकृत् = एक बार, साम्यम् = समानता, वृत्त्यानुप्रासः = वृत्त्यानुप्रास अलंकार, **उच्यते** = कहा जाता है।

सामान्यार्थ - बहुत से व्यंजनों का स्वरूप से एक बार या अनेक बार आवृत्ति या व्यंजनों का स्वरूप से या क्रम से बार-बार आवृत्ति या एक व्यंजन की केवल एक बार आवृत्ति या एक व्यंजन की अनेक बार आवृत्ति होती है, उसे वृत्त्यानुप्रास अलंकार कहते हैं।

उदाहरण में लक्षण समन्वय -

उन्मीलन्मधुगन्धलुब्धमधुपव्याधूत चूताङ्कुर,
क्रीडत्कोकिलकाकलीकलकलैरुद्गीर्णकर्णज्वराः।
नीयन्ते पथिकैः कथं कथमपि ध्यानाव धननक्षण,
प्राप्तप्राणसमासमागमरसोल्लासैरभीवासराः॥

श्लोकार्थ - प्रियतमा के चिन्तन में एकाग्रता के अवसर पर प्राण के समान प्रियतमा के समागम रस के आनन्द को पाने वाले पथिकों से, प्रचुरता से उत्पन्न होने वाले मकरूद के सुगन्ध से लुब्ध भौरों से प्रकम्पित आमों की मंजरियों में क्रीड़ा करने वाले कोयलों की सूक्ष्म ध्वनियों से और कोलाहलों से कानों में ज्वर उत्पन्न करने वाले वसन्त ऋतु के वे दिन बड़े ही कष्ट से बिताये जा रहे हैं। इस श्लोक में 'रसोल्लासैरभी' पद में रेफ और सकार का एक ही प्रकार से स्वरूप से साम्य है, उसी क्रम में नहीं। अपितु पूर्व पर का भेद है। रस पद में 'र' के बाद 'स्' और सैर पद में 'स्' के बाद 'र्' है। अतएव वृत्त्यानुप्रास अलंकार है। दूसरे पाद में 'क' और 'ल' की बार-बार क्रमशः आवृत्ति हुई है। अतएव वृत्त्यानुप्रास है। प्रथम पाद में वकार और धकार की बार-बार आवृत्ति हुई है। अतएव वृत्त्यानुप्रास है। कथं कथम् इन पदों व्यंजनों की एक बार आवृत्ति है। अतएव वृत्त्यानुप्रास है।

(3) श्रुत्यनुप्रास -

लक्षण - साहित्यदर्पण में विश्वनाथ ने इसका लक्षण कहा है -

उच्चार्यत्वाद्यरेकत्र स्थाने तालुरदादिके।
सादृश्यं व्यञ्धनस्यैव श्रुत्यनुप्रास उच्यते॥

अन्वय - तालुरदादिके एकत्र स्थाने उच्चार्यत्वात् व्यंजनस्य एव यत् सादृश्यं तत् श्रुत्यनुप्रास उच्यते।

शब्दार्थ - एकत्र = एक ही स्थान पर (उच्चारण में), तालुरदादिके = तातुदन्तादिक स्थान पर, उच्चार्यत्वात् = उच्चारित होने से, व्यंजजनस्यैव = केवल व्यंजनवर्ण की, सादृश्यम् = समानता, श्रुत्यानुप्रास = श्रुत्यानुप्रास नामक अलंकार, उच्यते = कहा जाता है।

सामान्यार्थ - तालुदन्तादि समान उच्चारण स्थान से उच्चारित व्यंजन वर्णों की जब समानता होती है तो वह श्रुत्यनुप्रास अलंकार होता है।

उदाहरण में लक्षण समन्वय -

दृशा दग्धं मनसिजं जीवयन्तिं दृशैव याः।
विरूपाक्षस्य जयिनीस्ताः स्तुमो वामलोचनाः॥

श्लोकार्थ - शिव की दृष्टिपात से कामदेव भस्मीभूत हो गया, जिसकी दृष्टि से भस्मीभूत कामदेव पुनः जीवित हो गया। उस त्रिनयनविजयिनी सुनयना रमणी की स्तुति करता हूँ। जीवयन्ति, याः, जयिनीः इत्यादि में जकार व यकार का एक से अधिक बार प्रयोग है। दोनों वर्णों का तालु उच्चारण स्थान है। ''इचुयशानां तालुं'' अतएव जकार, यकार दोनों का तालु समान उच्चारण स्थान होने से श्रुत्यनुप्रास अलंकार है।

पाठगत प्रश्न 25.2

11. शब्दार्थालंकार में शब्दपरिवर्तन संभव है या नहीं?
12. शब्दार्थालंकार का एक उदाहरण लिखिए।
13. पुनरुक्तवदाभासालंकार का लक्षण बताइए।
14. शब्दालंकार में शब्द का परिवर्तन संभव है या नहीं?
15. शब्दालंकार वाक्य ध्वनि होता है या नहीं?
16. अनुप्रास अलंकार का लक्षण लिखिए।
17. अनुप्रास अलंकार कितने प्रकार का है?
18. छेकानुप्रास का लक्षण क्या है?

टिप्पणी

19. छेक शब्द का अर्थ क्या है?

20. वृत्त्यनुप्रास अलंकार का लक्षण क्या है?

21. श्रुत्यनुप्रासालंकार का लक्षण क्या है?

(4) अन्त्यानुप्रास -

लक्षण - साहित्यदर्पण में विश्वनाथ अन्त्यानुप्रासालंकार का लक्षण कहते है कि -

व्यञ्जनं चेद्यथावस्थं सहाद्येन स्वरेणतु।
आवर्त्यतेऽन्त्ययोज्यत्वादन्त्यानुप्रास एव तत्॥

अन्वय - यथावस्थं व्यंजनं चेत् आद्येन स्वरेण सह आवर्तते अन्त्ययोज्यत्वात् तत् अन्त्यानुप्रास उच्यते।

सामान्यर्थः - पद या पाद के अन्त में स्थित व्यंजनवर्ण, अनुस्वार या विसर्ग के साथ स्वरवर्णादि से युक्त होता हुआ रहता है। उसी प्रकार यथासंभव उस वर्ण के आदि स्थित स्वर के साथ आवृत्ति होती है तो अन्त्यानुप्रास अलंकार होता है। यह अलंकार पाद या पद के अन्त में होता है।

जैसे - **केशः काशस्तबकविकासः कायः प्रकटितकरभविलासः।**
चक्षुर्दग्धवराटककल्पं त्यजति नो चेत् काममनल्पम्॥

इस श्लोक के प्रथमपाद के अन्त में आसः (विकासः) है। द्वितीय पाद के अन्त में आसः (विलासः) है, तृतीय पाद के अन्त में अल्पम् (कल्पम्) और चतुर्थ पाद के अन्त में अल्पम् है। अतएव आद्यस्वर के साथ यथावस्थित व्यंजन का पुनः उच्चारण हुआ है। अतः अन्त्यानुप्रास अलंकार है। इस श्लोक में पदान्त अन्त्यानुप्रास है।

(5) लाटानुप्रास -

लक्षण - कविराज विश्वनाथ ने लाटानुप्रास का लक्षण कहा है
''शब्दार्थयोः पौनरुक्त्यं भेदे तात्पर्यमात्रतः। लाटानुप्रासः इत्युक्तः॥''

अन्वयः- तात्पर्यमात्रतः भेदे शब्दार्थयोः पौनरुक्त्यं स लाटानुप्रासः इति उक्तः अस्ति।

सामान्यार्थ - आपात मात्र से शब्द और अर्थ की पुनरुक्ति लक्षित होती है। परन्तु वाग्यार्थबोध होने पर अर्थ भेद प्रतीति होती है। वह लाटा अनुप्रास होता है। पूर्वोक्त वृत्त्यनुप्रास आदि वर्णाभितिक हैं। यह लाटानुप्रास तो शब्दभित्तिकः है। शब्दगत समानता लाटानुप्रास में दिखाई देती है। यहाँ प्रथमदृष्टि से अर्थ की समानता भी दिखाई देती है। परन्तु वाक्यार्थ बोध होने पर अर्थभेद होता है।

उदाहरण में लक्षणसमन्वय -

धन्यः स एव तरुणो नयने तस्यैव नयने।
युवजनमोहनविद्या भवितेयं अस्य सम्मुखे सुमुखी॥

श्लोकार्थ - युवाजनों को सम्मोहित करने वाली, विद्यास्वरूपवाली यह कन्या जिसके साथ रहती है, सब वह युवक धन्य होता है। इसका नयन ही नयन सार्थक है। यहाँ नयन शब्द की आवृत्ति हुई है। प्रथम दृष्ट्या से भिन्नार्थक नहीं है। किन्तु वाक्यार्थ बोध होने पर अन्तिम नयन शब्द का सार्थक अर्थ है। यहाँ आपात दृष्टि से आवृत्त नयन शब्द का समान अर्थ है। परन्तु सम्यक् दृष्टि से पर्यालोचन से ज्ञात होता है कि दोनों शब्दों का अर्थ भिन्न होने से लाटानुप्रास है।

25.6 यमकालंकार

लक्षण - विश्वनाथ ने यमक अलंकार का लक्षण कहा -

सत्यर्थे पृथगर्थायाः स्वरव्यंजनसंहतेः।
क्रमेण तेनैवावृत्तिः यमकः विनिगद्यते॥

अन्वय- अर्थे सति पृथगर्थायाः स्वरव्यंजन संहतेः तेन क्रमेण एव आवृत्तिः यमकं विनिगद्यते।

सामान्यार्थ - अर्थ के विद्यमान होने पर भिन्नार्थ विशिष्टता से, अर्थ के अविद्यमान होने पर निर्थकता से स्वरव्यंजन वर्णों की एक बार उच्चारण होने के बाद पूर्वक्रमानुसर से पुनः उच्चारित होता है तो यमक अलंकार होता है। इस अलंकार में कहीं-कहीं पर पदों का अर्थ होता है, कहीं पर अर्थ नहीं होता, कहीं पर एक पद अर्थवाला और दूसरा निरर्थक होता है। अतः अर्थ के होने पर प्रयुक्त होता है। इस अलंकार में कहीं एकदेशस्थित वर्णों की आवृत्ति होती है।

उदाहरण में लक्षण समन्वय -

नवपलाशपलाशवनं पुरः स्फुटपरागपरागतपंकजं।
मृदुलतान्तलतान्तमलोकयत् स सुरभिं सुरभिं सुमनोहरैः॥

श्लोकार्थ - श्रीकृष्ण ने सम्मुख पुष्प समृद्ध सुरभि वसन्तकाल को देखा। इस वसन्त में पलाश वृक्ष समूह नवीन पत्रों से सुसज्जित है। विकसित कमल पराग से आकीर्ण है। रौद्र के उत्ताप से सुकुमार लता अग्रभाग दुःखी है।

इस श्लोक में पलाश और सुरभि इन दो शब्दों की आवृत्ति हुई है। भिन्नार्थकता से दो बार आवृत्ति हुई। यह प्रथम पलाश का अर्थ 'पत्र' है द्वितीय पलाश शब्द का अर्थ पलाश वृक्ष विशेष है। प्रथम सुरभि शब्द का अर्थ सुगन्ध है और द्वितीय सुरभि शब्द का अर्थ वसन्तकाल है।

इस प्रकार भिन्न अर्थ वाले पलाश और सुरभि पदों की आवृत्ति हुई है। लतान्त और पराग इन दो पदों की भी आवृत्ति हुई है। इस श्लोक में प्रथम लतान्त और द्वितीय पराग शब्द निरर्थक है। अतः यहाँ यमक अलंकार है।

टिप्पणी

25.7 वक्रोक्त्यलंकार

लक्षण - आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में वक्रोक्ति अलंकार का लक्षण कहा -

अन्यस्यान्यार्थकं वाक्यमन्यथा योजयेद्यादि।
अन्यः श्लेषेण काक्वा वा सा वक्रोक्तिः ततो द्विधा॥

अन्वय - अन्यस्य अन्यार्थकं वाक्यम् अन्यः यदि श्लेषेण काक्वा वा अन्यथा योजयेत् तदा सा वक्रोक्तिः नाम अलंकार स्यात्॥

सामान्य अर्थ - वाक्य में किसी अर्थ को उद्देश्य करके वक्ता कुछ वाक्य कहता है परन्तु श्रोता वाक्य को सुनकर श्लेष या काकु से भिन्न अर्थ ग्रहण करता है तब वक्रोक्ति होता है। अर्थात् वक्ता के इष्ट अर्थ का परित्याग कर श्लेष अथवा काकु से कुछ भिन्न अर्थ ग्रहण होता है।

वक्रोक्ति दो प्रकार की होती है। श्लेष वक्रोक्ति और काकु वक्रोक्ति। श्लेष से अर्थात् अनेकार्थ की सहायता से जो वक्रोक्ति होती है वह श्लेष वक्रोक्ति और काकु से अर्थात् स्वरादि की सहायता से जो वक्रोक्ति होती है वह काकु वक्रोक्ति होती है जैसे श्लेष वक्रोक्ति का उदाहरण में लक्षण समन्वय -

के यूयं, स्थल एव सम्प्रति वयम्, प्रश्नो विशेषाश्रयः।
किं ब्रूते विहगः, स वा फणिपतिर्यत्रास्ति सुप्तो हरिः॥

श्लोकार्थ - 'के यूयम्' यह वक्ता ने प्रश्न किया। परन्तु श्रोता 'क' शब्द का 'जल' अर्थ ग्रहण करता है क्योंकि 'क' शब्द जलवाचक एवं जलवाचक 'क' का सप्तमी एकवचन में 'के' रूप होता है। तब श्रोता कहता है हम स्थल पर ही है। वक्ता ने समझा कि श्रोता मेरे वाक्य का अर्थ नहीं जान पाया। वक्ता स्पष्टतया कहता है कि प्रश्न विशेषाश्रय हैं अर्थात् प्रश्नवाचक 'क' शब्द को स्वीकार करके मेरा प्रश्न है। श्रोता विशेष शब्द को तोड़कर (विच्छेद करके) श्लेष से अर्थ प्रतिपादित करता है वि शब्द का अर्थ पक्षी और शेष शब्द का अर्थ सर्प है। श्रोता श्लेष से प्रश्न का अर्थ समझकर उत्तर देता है कि क्या कहते हो, वह पक्षी या फणिपति (विष्णु) शेष जहाँ हरि सोते हैं। अतः यहाँ श्लेष वक्रोक्ति अलंकार है।

काकुवक्रोक्ति का उदाहरण -

काले कोकिलवाचाले सहकारमनोहरे।
कृतागसः परित्यागात् तस्याः चेतो न दूयते॥

श्लोकार्थ - कोयल जब वाचाल होती है, आम्र मुकुल जब विकसित होते हैं उस वसन्तकाल में अपराध करने वाले पति का परित्याग करके सखि का चित्त दुःख ग्रस्त नहीं होता है यह सामान्य अर्थ है।

परन्तु काकु से विपरीत अर्थ आता है। वसन्तकाल में जब कोयल उन्मत्त हो, आम्रमुकुल विकसित हो, उस वसन्त ऋतु में प्रिय के साथ प्रियतमा का आलिंगन में अत्यन्त आग्रह होता

है। वसन्त काल में प्रिय कभी अपराध करता है तो भी प्रियतमा उस प्रिय का परित्याग नहीं करती। अर्थात् वसन्तकाल में प्रियविरह में प्रियतमा को अत्यन्त दु:ख होता है। इस श्लोक में किम् प्रश्नवाचक पद है। यह चिन्तन करके भिन्नस्वर से यह श्लोक वक्तव्य है।

'श्लिष्टै: पदै: अनेकार्थाभिधने श्लेष इष्यते' अर्थात् अनेकार्थक वाचक पद ही श्लिष्ट पद होता है। एकबार उच्चारित पद। अनेकार्थ का वाचक होता है। यह श्लेषालंकार आठ प्रकार का होता है। 1. वर्णगत, 2. प्रत्ययगत, 3. लिंगगत, 4. प्रकृतिगत, 5. पदगत, 6. विभक्तिगत, 7. वचनगत और 8. भाषागत। साहित्यदर्पण में कविराज विश्वनाथ ने कारिका में कहा -

श्लिष्टै: पदैरनेकार्थाभिधने श्लेष इष्यते।
वर्णप्रत्ययलिंगानां प्रत्ययो: पदयोरपि॥
श्लेषाद्विभक्तिवचनभाषाणामष्टध च स:॥

विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में आठ भेद श्लेषलंकार के प्रतिपादित किये हैं। प्रत्येक की उदाहरण पूर्वक समालोचना की है। परन्तु यह सामान्यतया केवल श्लेषालंकार की विषय चर्चा निहित है।

पाठगत प्रश्न 25.3

22. अन्त्यानुप्रासालंकार का लक्षण क्या है?

23. लाटानुप्रास का लक्षण क्या है?

24. यमक अलंकार का लक्षण क्या है?

25. वक्रोक्ति अलंकार का लक्षण क्या है?

26. वक्रोक्ति कितने प्रकार का है?

27. श्लेष किसे कहते है?

28. श्लेषालंकार के भेद कितने हैं?

पाठसार

इस पाठ में शब्दार्थमय काव्य शरीर के शोभाकारक अलंकारों का प्रतिपादन किया है। मूलत: **अलंकार तीन प्रकार के होते हैं** - 1. शब्दार्थालंकार, 2. शब्दालंकार, 3. अर्थालंकार। शब्दार्थालंकार में शब्द और अर्थ दोनों की प्रधानता होती है। काव्यमार्ग में पुनरुक्तवदाभास नामक एक ही शब्दार्थालंकार है। अनुप्रास यमक वक्रोक्ति शब्दालंकार हैं। उनमें अनुप्रास पाँच प्रकार का होता है - 1. छेका, 2. वृत्ति, 3. श्रुति, 4. अन्त्य, 5. लाटा। पाँच प्रकार के अनुप्रास के लक्षण व उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। वक्रोक्ति अलंकार दो प्रकार का है। 1. श्लेषवक्रोक्ति, 2. काकुवक्रोक्ति। भिन्नकण्ठध्वनि से कथन काकु होता है। अनेकार्थ शब्दों के श्लिष्ट होने पर

टिप्पणी

श्लेष होता है। एक बार उच्चारित पद अनेकार्थ का वाचक होता है। यह श्लेष आठ प्रकार का है। इस प्रकार वाक्य में अलंकार है तो काव्य सुन्दर होता है। सौन्दर्य ही अलंकार होता है। वामन ने कहा है- ''काव्यं ग्राह्यमलंकारात्'' जैसे लोक में अलंकार आदि शोभा को बढ़ाकर शरीर को उपकृत करते हैं। उसी प्रकार शास्त्र में भी अलंकार शब्दार्थों की शोभा बढ़ाकर रसादि को उपकृत करते हैं।

आपने क्या सीखा

- शब्दालंकार का सामान्य परिचय जाना।
- उनके भेद तथा उपभेदों को जाना।
- कवि निर्मत अलंकारों को पहचानना जाना।
- उदाहरण में लक्षण का समन्वय कर पाना जाना।

पाठान्त प्रश्न

1. अलंकार के विषय में लघु निबन्ध लिखिए।
2. अलंकार का लक्षण लिखिए।
3. अलंकार का प्रयोजन लिखिए।
4. अलंकारों के भेदों को विस्तार से लिखिए।
5. पुनरुक्तवदाभासालंकार का वर्णन कीजिए।
6. शब्दालंकार के विषय में लघु प्रबन्ध लिखिए।
7. अनुप्रास के भेदों को प्रदर्शित कीजिए।
8. छेकानुप्रास अलंकार का वर्णन कीजिए।
9. वृत्त्यानुप्रास अलंकार का वर्णन कीजिए।
10. श्रुत्यनुप्रास अलंकार का वर्णन कीजिए।
11. अन्त्यानुप्रास अलंकार का वर्णन कीजिए।
12. लाटानुप्रास अलंकार का वर्णन कीजिए।
13. यमक अलंकार का वर्णन कीजिए।
14. वक्रोक्ति अलंकार का वर्णन कीजिए।

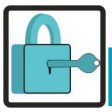

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

25.1

1. अलंकृतिः अलंकार।
2. अलंक्रियते अनेन।
3. काव्यशोभाकरान् धर्मान अलंकारान् प्रचक्षते।
4. दो प्रकार।
5. अनुप्रासालंकार।
6. उपमालंकार।
7. भामह का।
8. अलंकार।
9. उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽगंद्वारेण जातुचित्।
   हारादिवदलंकारास्ते ऽनुप्रासोपमादयः।।
10. शब्दार्थयोरास्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनः।
    रसादीनुपकुर्वन्तोऽलंकारास्तेऽंगदादिवत्।।

25.2

11. संभव है
12. पुनरुक्तवदाभासालंकार ।
13. आपाततो यदर्थस्य पौनरूक्त्यावभासनम्।
    पुनरुक्तवदाभासः स भिन्नाकार शब्दगः।।
14. समर्थ नहीं।
15. नहीं।
16. ''अनुप्रासः शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत्''।

टिप्पणी

17. पंचविध।

18. छेको व्यंजन संघस्य सऽत्साम्यमनेकध''।

19. रसिक।

20. अनेकस्यैकधा साम्यम् असऽद्वापि अनेकधा।

    एकस्य सकृद् अय्येष वृत्त्यानुप्रास उच्यते।

21. उच्चार्यत्वाद्यरेकत्र स्थाने तालुरदादिके।

    सादृश्यं व्यञ्नस्यैव श्रुत्यनुप्रास उच्यते।।

25.3

22. व्यञ्जनं चेद्यथावस्थं सहाद्येन स्वरेणतु।

    आवर्त्यतेऽन्त्ययोज्यत्वादन्त्यानुप्रास एव तत्।।

23. शब्दार्थयोः पौनरुक्त्यं भेदे तात्पर्यमात्रतः। लाटानुप्रासः इत्युक्तः।।''

24. सत्यर्थे पृथगर्थायाः स्वरव्यंजनसंहतेः।

    क्रमेण तेनैवावृत्तिः यमकः विनिगद्यते।।

25. अन्यस्यान्यार्थकं वाक्यमन्यथा योजयेत् यदि।

    अन्यः श्लेषेण काक्वा वा सा वक्रोक्तिः ततो द्विध।।

26. द्विविध।

27. 'श्लिष्टैः पदैः अनेकार्थाभिधने श्लेष इष्यते'।

28. आठ प्रकार।

26

अर्थालंकार

पूर्व पाठ में शब्दालंकारों का निरूपण किया गया। अब इस प्रकरण में अर्थालंकार का निरूपण प्रारम्भ करते हैं। सौन्दर्य ही अलंकार है यह पूर्व पाठ में पढ़ चुके हैं। कौन अलंकृत करता है, शब्द या अर्थ। उसके द्वारा काव्य की आत्मा रस उपकृत होती है। अत: अलंकार कहाँ होता है? शब्द या अर्थ में। अलंकार ही काव्य होता है यह कुन्तक कहते हैं। जैसे केयूर हार आदि सौन्दर्यजनक हैं और आत्मा के सौन्दर्य को बढ़ाते हैं। उसी प्रकार काव्यशरीरभूत शब्द और अर्थ के सौन्दर्य उत्पादन द्वारा काव्य की आत्मा रस को बढ़ाते है। परमार्थ से उक्ति वैचित्र्य ही अलंकार है। किस के लिए उक्ति वैचित्र्य है काव्य में लोकोत्तर रमणीयत्व निष्पत्ति के लिए। अथवा रस पोषण को स्वीकार करते हैं। शब्द वैचित्र्य और अर्थ वैचित्र्य से अलंकार दो प्रकार होते हैं। कुछ के मत में उभयालंकार भी होता है। अर्थालंकार में अर्थ की प्रधानता दिखाई देती है। क्योंकि अर्थ के कारण से ही काव्य में लोकोत्तर चमत्कार उत्पन्न किया जाता है। उसके द्वारा ही यह काव्य रमणीय होता है। उनमें अर्थालंकार बहुत प्रकार के है। अलंकारों में सादृश्य घटित उपमालंकार का शुरु में विचार किया जाता है। क्योंकि अर्थालंकारों में सादृश्यमूलक अलंकार की प्रधानता जिनमें होती है। उसमें प्रथमत: उपमालंकार कहा जाता है और उपमालंकार विशेष सौन्दर्यजनक है। साहित्य में उपमा का बहुत प्रयोग हुआ है। उपमा अत्यन्त प्राचीन है। अत: एव उपमालंकार का प्रथम वर्णन करके अन्य अर्थालंकारों का वर्णन करेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे :

- अर्थालंकारों के लक्षण को जान पाने में;
- अर्थालंकारों के उदाहरणों को जान पाने में;
- अर्थालंकार के वैशिष्ट्य को जान पाने में;

- उपमा अलंकार का सविस्तार ज्ञान प्राप्त कर पाने में;
- श्लोकों में अर्थालंकार का निर्णय कर पाने में;
- स्वयं अलंकारों के अनुसार श्लोक निर्माण कर पाने में और;
- उदाहरण में अलंकार के लक्षणों का समन्वय कर पाने में।

26.1 अर्थालंकार

अर्थ चमत्कार को अवलम्बन करके अर्थालंकार स्वीकार किये जाते है। अर्थात् जिस अलंकार में अर्थ को आश्रय करके कोई चमत्कृति होती है तो वह अर्थालंकार कहा जाता है। अर्थालंकार में सम अर्थक शब्द को परिवर्तित किया जाता है तो अलंकार वैसे ही रहता है। अर्थात् समानार्थक शब्द प्रयोग शक्य होता है तथा अर्थ प्रधान होता है। उपमा रूपाकादि अर्थालंकार हैं।

विशेषताएँ

1. अर्थालंकार में समार्थक शब्द का प्रयोग शक्य होता है।
2. अर्थालंकार में शब्दपरिवर्तन समर्थ होता है।
3. अर्थालंकार में अर्थ परिवर्तन समर्थ होता है।
4. अर्थालंकार का उदाहरण उपमारूपकादि है।

26.2 उपमालंकार

साहित्यदर्पण ग्रन्थ में विश्वनाथ ने अतिप्राचीन व अधिक प्रयोग होने से उपमा अलंकार का सर्वप्रथम वर्णन किया है।

लक्षण - साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाच्यैक्य उपमा द्वयोः।

अन्वय - वाक्यैक्ये द्वयोः अवैधर्म्यं वाच्यं साम्यम् उपमा अलंकारः।

शब्दार्थ - वाक्यैक्ये = एक वाक्य में, द्वयोः = उपमान और उपमेय दोनों का, अवैधर्म्यम् = विरूद्धधर्मरहित, वाच्यम् = कहा जाय, साम्यम् = समानता, उपमा = उपमालंकार होता है।

सामान्यार्थ - विजातीय वस्तुओं के विरूद्ध धर्म को न कहकर यदि गुणक्रियागत समानता को इव आदि शब्द से प्रतिपादित हो, तो वह उपमालंकार होता है। साधरणतया दो वस्तुओं के मध्य साधर्म्य और वैधर्म्य सम्बन्ध होता है। दोनों वस्तुओं के वैधर्म्य को न कहकर इव आदि शब्दों से सादृश्य को कहा जाता है। वह सादृश्य गुण और क्रियागत होता है। अर्थात् उपमान और उपमेय विजातीय वस्तुओं के मध्य कोई समानता की कल्पना की जाती है। वहाँ

उपमालंकार होता है। इस प्रकार इव आदि शब्दों से समानता की स्पष्ट प्रतीति होती है। दोनों वस्तुओं के बीच विरूद्ध धर्म का उल्लेख न हो। साम्य साधरण धर्म सम्बन्ध रूप सादृश्य का नाम उपमा अलंकार है। उपमान उपमेय से कल्पित दो पदार्थो का समान धर्म से साधर्म्य या समानता का निरूपण किया जाता है। समानता साधर्म्य गुण क्रियादिरूप होता है। उपमान उपमेय उभयगत धर्म ही सधर्म होता है।

उदाहरण में लक्षण समन्वय – 'चन्द्र इव मुखं सुन्दरम्' यह उदाहरण है। चन्द्र और मुख दोनों वस्तुएँ भिन्न है। सौन्दर्यत्व और आह्लादकत्व चन्द्र एवं मुख दोनों में है। सौन्दर्यत्वादि गुण से चन्द्र और मुख की समानता कही है। इव आदि शब्द से चन्द्रमुख की सादृश्यता स्पष्ट कही है। यह लक्षण समन्वय है। अतः यह वाक्य उपमा का है।

वह उपमालंकार दो प्रकार का होता है – 1. पूर्णोपमा 2 लुप्तोपमा।

26.2.1 पूर्णोपमा लक्षण

सा पूर्णा यदि सामान्य धर्म औपम्यवाचि च।
उपमेयं चोपमानं भवेत् वाच्यम्।

अन्वय – यदि सामान्य धर्म औपम्यवाचिशब्दः उपमेयं उपमानं च भवेत् सा पूर्णा उपमा इति वाच्यम्।

सामान्यार्थ – जिस अलंकार में सामान्य धर्म, उपमावाचक शब्द, उपमेय और उपमान होता है वह पूर्णोपमा कहा जाता है। पूर्णोपमा के चार अंग होते हैं। 1. उपमेय, 2. उपमान, 3. साधरणधर्म, 4. सादृश्यवाचक शब्द।

उदाहरण में लक्षण समन्वय – 'कमलम् इव मुखं मनोज्ञम्' अर्थात् पद्म के समान सुन्दर मुख। यहाँ उपमेय और उपमान में मनोज्ञ धर्म समान है। इव उपमावाचक शब्द है। मुख उपमेय और कमल उपमान है। अतः चारों का वर्णन होने से पूर्वोपमा अलंकार है।

पूर्णोपमा के पुनः दो भेद है। श्रोती और आर्थी।

26.2.2 लुप्तोपमा

जहाँ उपमा वाचक घटकों (उपमान, उपमेय, उपमावाचक शब्द और साधारण धर्म) में से एक दो या तीन का उल्लेख नहीं हो तो लुप्तोपमा होता है।

लक्षण – लुप्ता सामान्यधर्मादेः एकस्य यदि वा द्वयोः।
त्रयाणां वानुपादाने श्रौत्यार्थी सापि पूर्ववत्।।

अन्वय – यदि सामान्य धर्मादेः एकस्य द्वयोः त्रयाणां वा अनुपादने लुप्ता। सापि पूर्ववत् श्रोत्यार्थी।

सामान्यार्थ - सामान्य धर्म, उपमेय उपमान और उपमावाचक शब्द इन में से एक, दो या तीनों का अनुपादान होता है तो वह लुप्तोपमा कही जाती है। अर्थात् यदि उपमा के चार अंगों में से एक, दो या तीन अंगों का लोप हो तो वह लुप्तोपमा होती है। वह लुप्तोपमा भी दो प्रकार की होती है। 1. श्रोती और 2. आर्थी।

उदाहरण में लक्षण समन्वय - 'मुख' चन्द्र इव' इस उदाहरण में लुप्तोपमा है। क्योंकि इस में चन्द्र और मुख का सादृश्य मनोज्ञत्व के कारण ही है। दोनों में मनोज्ञत्व है। अत: मनोज्ञत्व रूप साधारण धर्म है। इस वाक्य में मुख उपमेय, चन्द्र उपमान, इव उपमा वाचक शब्द इन तीनों का उल्लेख है और साधरण धर्म का लोप है। अत: एक के लोप होने से लुप्तोपमा का उदाहरण है।

26.3 अनन्वयालंकार

साहित्यदर्पण में अनन्वयलंकार का लक्षण- **'उपमानोपमेयत्वम् एकस्यैव त्वनन्वय:'।**

सामान्यार्थ - एक ही वस्तु को युगपत् रूप से उपमेय एवं उपमान मान लिया जाये तो अनन्वयालंकार होता है। अर्थात् उपमानोपमेय भाव एक वाक्यगत हो तो अनन्वयालंकार होता है। यदि अनेकवाक्यगत उपमेयोपमान भाव हो तो रसनोपमा अथवा उपमेयोपमा होता है। जैसे 'चन्द्रायते शुक्लरूचापि हंस:' इस स्थल में रसनोपमा है और 'कमलेव मति: मतिरिव कमला' इस स्थल में उपमेयोपमा है। अतएव अनन्वय एकवाक्यगत विषय होता है।

उदाहरण में लक्षणसमन्वय - **राजीवमिव राजीवं जलं जलमिंवाजनि।**
चन्द्रश्चन्द्र इवातन्द्र: शरत्समुदयोद्यमे॥

श्लोकार्थ - शरद ऋतु के आविर्भाव काल में कमल कमल के समान, जल जलवत्, चन्द्र चन्द्रवत् निर्मलभाव को धारण करते हैं।

राजीव, जल, चन्द्र तीनों ही युगपत् रूप से उपमान और उपमेय हैं। अर्थात् राजीव आदि उपमान और उपमेय दोनों है। यहाँ राजीव आदि में एक ही वस्तु में उपमेयोपमानभाव की कल्पना है। अनन्वय सादृश्यमूलक अलंकार है। यह एक ही अलंकार वाक्य की सादृश्यता मूलक है।

सादृश्य सदैव दो वस्तुओं के मध्य संभव है। इस उदाहरण में एक ही वस्तु उपमान और उपमेय दोनों है।

26.4 रूपकांलकार

अलंकाराकाश में रूपकालंकार अत्यन्त प्रसिद्ध है। साहित्यदर्पण में रूपक का लक्षण है - **''रूपकं रूपितारोपाद्वि विषये निरपह्नवे।'**

अन्वय - निरपह्नवे विषये रुपितारोपे रूपकं अलंकार स्यात्।

शब्दार्थ – निरपह्नवे विषये = निषेधरहित विषय में, रूपितोरापे = उपमानपदार्थ का तादात्म्य में या अभेद में, रूपकम् = रूपकालंकार होवे।

सामान्यार्थ – निषेधरहित विषय उपमेय में रूप उपमान पदार्थ का आरोप (अभेदप्रतीति) ही रूपक अलंकार है। अर्थात् निषेध रहित उपमेय में उपमान के साथ उपमान पदार्थ की अभेद कल्पना है वह रूपक है। उपमेय की उपमानात्मक प्रतीति होती है। विषय के ऊपर विषयी का अभेदोरोप किया जाता है। रूपक उपमानोपमेय का अभेद आरोप करता है। विजातीय वस्तुओं की अत्यन्त सादृश्यता के कारण अभेद कल्पना संभव होती है। यहाँ अत्यन्त सादृश्यता से अभेदकल्पना पैदा होती है।

उदाहरण में लक्षण समन्वय – मुखचन्द्र 'भाति:' यहाँ उपमेय निषेध रहित है। उपमेय मुख का उपमान चन्द्र के साथ अभेद कल्पना की गई है। यहाँ उपमेय मुख की उपमान चन्द्र, चन्द्रत्व से प्रतीति होती है। मुख के साथ चन्द्र का अभेदारोप होता है। मुख और चन्द्र में अत्यन्त सादृश्य है। अत: एव मुख और चन्द्र की अभेद कल्पना होती है। अत: यहाँ रूपक कहा जा सकता है।

पाठगत प्रश्न 26.1

1. अर्थालंकार कौन है?
2. अर्थालंकार का एक उदाहरण बताएँ?
3. अर्थालंकार का एक वैशिष्ट लिखिए।
4. उपमालंकार का लक्षण लिखिए।
5. उपमा कितने प्रकार की है?
6. पूर्णोपमा का लक्षण लिखिए।
7. लुप्तोपमा का लक्षण लिखिए।
8. अनन्वयालंकार का लक्षण लिखिए।
9. रूपकालंकार का लक्षण लिखिए।
10. पूर्वोपमा के चार अंग कौन से हैं?
11. लुप्तोपमा कितने प्रकार की है?

26.5 उत्प्रेक्षालंकार

यह सादृश्य मूलक अलंकार है। काव्यमार्ग में कवि जनों के साथ उत्प्रेक्षा अलंकार अत्यन्त प्रिय है। अलंकारशेखर में उत्प्रेक्षा को श्रेष्ठ माना है। नववधु के हास्य के समान यह अलंकार

मनोरम होता है। साहित्यदर्पण में लक्षण – भवेत् सम्भावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना।

अन्वय – प्रख्रतस्य परात्मना संभावना उत्प्रेक्षा भवेत्।

शब्दार्थ – प्रकृतस्य = उपमेय पदार्थ का, परात्मना = उपमान पदार्थ रूप से, सम्भावना = संशय, उत्प्रेक्षा = उत्प्रेक्षालंकार हो।

सामान्यार्थ – प्रकृतस्य (उपमेय) का परात्मना (उपमान) के साथ संभावना उत्प्रेक्षालंकार है। उपमेय का उपमानतादात्म्य से सम्भावना ही उत्प्रेक्षा है। अत्यन्त सादृश्य के कारण उपमेय का उपमानता से आशंका की जाये तो उत्प्रेक्षा होती है। उद् का अर्थ ऊर्ध्वगामी, प्रेक्षा का अर्थ दृष्टि होता है। जिस किसी वस्तु के भावनाकाल में भावनाकारी दृष्टि अत्यन्त उर्द्धगामी होती है। अतः वह उत्प्रेक्षा नाम से जाना जाता है।

उपमान और उपयोग की अत्यन्त सादृश्यता उत्प्रेक्षा का घटक है। फिर भी उपमेय और उपमान का भेद ज्ञान तिरोहित नहीं होता है। भेदज्ञान होने पर भी अभेदता से वर्णन के लिए कवि की इच्छा होती है। सम्भावना शब्द अर्थ संशय होता है। फिर भी शुद्ध संशय नहीं ग्रहण करना चाहिए। स्थाणु है अथवा पुरूष है यह ज्ञान शुद्ध संशयात्मक है यहाँ स्थाणु ही है यह निश्चयात्मक ज्ञान ही सम्भावना पद से कहा जाता है।

उत्प्रेक्षा का वैशिष्ट्य

1. उपमा के समान उत्प्रेक्षा में भी कवि कल्पना से एक वास्तवभिति है। जैसे तस्याः मुखं भाति पूर्णचन्द्र इवापरः।
2. उपमा के समान उत्प्रेक्षा में उपमानोपमेयभाव है। परन्तु अत्यन्त सादृश्यता के कारण उपमेय को उपमान से शंका करते है। इस प्रकार चिन्तन की भ्रमात्मक है या नहीं है या दोनों कह सकते हैं।
3. 'भ्रम यह ऐच्छिक है। इस कारण 'नूनं' तव मुखं चन्द्रः' स्थल में नायक का ज्ञान है क्योंकि मुख और चन्द्र समान वस्तु नहीं है।
4. यह सादृश्य मूलक अलंकार है।

उदाहरण में समन्वय – **ज्ञाने मौनं क्षमा शक्तौ त्यागे श्लाघाविपर्ययः।**
गुणा गुणानुबन्धित्वात् तस्य सप्रसवा इव॥

श्लोकार्थ – ज्ञान होने पर भी मौन रहता है, शक्ति होने पर भी क्षमा है, त्याग करने में भी गर्व का अभाव है। रघुवंश के राजाओं में परस्पर विरोधी गुण एक साथ रहते हैं। परस्पर विशुद्धगुण सहोदर के समान रहते हैं।

इस श्लोक में ज्ञानादि गुण उपमेय है। सप्रसवा उपमान है, ज्ञानादिगुण सप्रसव रूप से उत्प्रेक्षा है। इव शब्द से सादृश्य की अधिकता से स्फुट हो रहा है। उपमेय (ज्ञानादिगुण को) उपमानत्व से (सप्रसवात्व से) आशंका होती है। अत्यन्त सादृश्यता के कारण प्रकृत उपमेय की (ज्ञानादिगुणों की) उपमानात्मा से (सप्रसवात्मना) से संभावना की गई है। अतः यहाँ उत्प्रेक्षालंकार है।

26.6 अपह्नुति

अपह्नुति सादृश्यमूलक अलंकार है। यह भी उपमानोपमेय विषय अलंकार है। अपह्नव का अर्थ गोपन या छिपाना हैं आरोपविषय (उपमेय) का अपह्नवनकरण (छिपाना) होता है। अतः इसे अपह्नुति अलंकार कहते हैं। साहित्यदर्पण में इसका लक्षण –

प्रकृतं प्रतिषिधयान्यस्थापनं स्यादपह्नुतिः।

अन्वय – प्रकृतं प्रतिषिधयान्यस्थापनं स्यात् अपह्नुति।

शब्दार्थ – प्रकृतम् = उपमेय का, प्रतिषिधय = साक्षात् या परोक्ष निषेध करके, अन्यस्य = उपमान की, स्थापनम् = स्थापना , अपह्नुति = अपह्नुति अलंकार, स्यात् = होवे।

उपमेय का निषेधपूर्वक उपमेय का उपमान के साथ तादाम्य से उपपादन को अपह्नुति कहते हैं। प्रकृत (उपमेय) का निषेध करके अन्य (उपमान) का आरोप करने को अपह्नुति कहते हैं। रूद्रट् के मत में अपह्नुति उपमेय निषेधपूर्वक उपमेय में उपमान को होने से स्थापना होती है। इस कारण की उपमान और उपमेय की अत्यन्त सादृश्यता होती है। अतः रूद्रट ने कहा है – ''अतिसाम्यात् उपमेयं यस्यामसदेव कथ्यते सदपि'' वामन ने भी कहा है – ''समेन वस्तुना अन्यापलापोखपह्नुतिः'' अर्थात् निषेध करके दो वस्तुओं के मध्य सादृश्य अत्यन्त आवश्यक होता है। उपमेय का निषेध दो प्रकार से होता है। 1. आदि मे निषेध बाद में आरोप 2. आदि में आरोप बाद में निषेध।

वैशिष्ट्य –

1. उपमेय वस्तु का निषेध होता है।
2. उपमेय के स्थान पर उपमान की स्थापना होती है।
3. उपमेय के निषेध व उपमान की स्थापना ऐच्छिक है।
4. सादृश्यमूलक अलंकार है।
5. उपमेय का निषेध दो प्रकार से होता है – 1. शुरू में निषेध बाद में आरोप, 2. शुरू में आरोप बाद में निषेध

उदाहरण में समन्वय –

नेदं नभोमण्डलमम्बुराशिर्नैताश्च तारा नकेनभंगा।
नायं शशी कुण्डलितः फणीन्द्रो नासौ कलंकः शयितो मुरारिः॥

श्लोकार्थ– यह गगन नहीं अंबुराशि है, ये नक्षत्र नहीं ये तो नकेन समूह हैं, यह चन्द्र नहीं है यह तो कुण्डलित फणि है, न ही यह चन्द्र का कलंक है, अपितु कृष्ण सो रहे हैं।

इस श्लोक में नभोमण्डल, तारा, शशी कलंक ये उपमेय है। यहाँ अम्बुराशि, नकेनभंग, कुण्डलित, फणीन्द्र, मुरारि ये उपमान है। इस श्लोक में आकश, चन्द्र कलंक सभी सत्य है। किन्तु शुरू में गगनादि का निषेध करके उपमान सागरदि की सत्यरूप से स्थापना की गई है। यहाँ निषेध और स्थापन का हेतु सादृश्य है। नञ् शब्द से उपमेय रूप का निषेधपूर्वक उपमान का आरोप किया गया है। अतः यहाँ अपह्नुवपूर्वक आरोप होने से अपह्नुति अलंकार है।

आरोपपूर्वक अपह्नुति का उदाहरण –

विराजति व्योमवपुः पयोधिस्तारामयास्तत्र च फेनभंगाः॥
फणीश्वरोखयं द्विजराज मूर्तिर्नबाम्बुदश्रीर्ननु तस्य लक्ष्म॥

नभ, शरीर, सिन्धु शोभामान है, उस सिन्धु में नक्षत्ररूपी फेन समूह देखा जाता है। यहाँ वपु शब्द से मयट प्रत्यय करने से और यथाक्रम व्योम और नक्षत्र का निषेध करता है। परन्तु निषेध वाचन नञ् आदि साक्षात् नहीं हैं वस्तुतः गगन, नक्षत्र, में समुद्र के फेन समूह का आरोप किया गया है। यह निषेध गगनादि के निषेध के बिना कदापि संभव नहीं है। यहाँ शुरू में आरोप बाद में निषेध है और आरोप में सादृश्य ही कारण है। अतः आरोपपूर्वक अपह्नवमूलक अपह्नुति अलंकार है।

26.7 दृष्टान्तालंकार

यह बिम्बप्रतिबिम्ब मूलक अलंकार है। साधर्म्य और वैधर्म्य भेद से दो प्रकार का होता है। साहित्यदर्पण में लक्षण – ''दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम्॥''

अन्वय – सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनं दृष्टान्तः।

शब्दार्थ – सधर्मस्य = समानधर्म विशिष्ट का, वस्तुनः = पदार्थ का, प्रतिबिम्वम् = प्रतिबिम्बभाव से स्थापना, दृष्टान्तः = दृष्टान्त अलंकार होता है।

सामान्यार्थ – प्रस्तुत (उपमेय) के समर्थन में सादृश्य वस्तु का प्रतिबिम्ब रूप से उपस्थापना दृष्टान्त अलंकार है। दृष्ट अन्त समर्थनीय होने पर समर्थक वस्तु के स्वरूप सादृश्य जिसमें है वह दृष्टान्त अलंकार है। अर्थात् समर्थनीय वस्तु में समर्थक वस्तु का जो सादृश्य है वह दृष्टान्त है। इसमें एक दृष्टान्त वाक्य और दूसरा दृष्टांतिक वाक्य होता है। प्रथम वाक्य समर्थक और दूसरा समर्थ्य होता है। यहाँ भी बिम्ब प्रतिविम्बभाव के मध्य सादृश्य ही नियामक है। जहाँ सादृश्य वाच्य से प्राप्त न होवे वहाँ तात्पर्य से प्राप्त होता है। प्रतिबिम्ब बिम्ब से भिन्न होता है। फिर भी प्रतिबिम्ब बिम्ब सदृश ही होता है।

वैशिष्ट्य –

1. इसमें दो स्वतन्त्र वाक्य होते हैं।

2. एक वाक्य का समर्थन दूसरे वाक्य से होता है। उनका उपमेय उपमान भाव सम्बन्ध होता है।

3. उपमान और उपमेय का धर्म पृथक्ता से कहना चाहिए।

4. धर्मो के मध्य में सादृश्य हों।

5. पुनः सादृश्य वाच्य नहीं होता है। अपितु सादृश्य तात्पर्यगम्य होता है।

उदाहरण में लक्षण समन्वय –

अविदित गुणापि सत्कविभणितिः कर्णेषु वमपि मधुधराम्।
अनधिगतपरिमलापि हि हरति दृशं मालतीमाला॥

सामान्यार्थ – गुण के विदित न होने पर भी उत्तम कवि की उक्ति सुनने वालों के कानों में मधुधारा बरसाती है, सुगन्ध की प्राप्ति न करने पर भी चमेली की माला चित्त को आकृष्ट करती है। यहाँ कानों में मधुधरा बरसाना और नेत्र का आकर्षण ये दो भिन्न धर्म प्रीति जनक होने से दो वाक्यों के सादृश्यता का बोध कराते है। यह साधर्म्य में दृष्टान्त अलंकार का उदाहरण है।

पाठगत प्रश्न 26.2

12. उत्प्रेक्षा कैसा अलंकार है?

13. उत्प्रेक्षा का लक्षण लिखिए।

14. उत्प्रेक्षालंकार का एक वैशिष्ट्य लिखिए।

15. अपह्नुति अलंकार का एक वैशिष्ट्य लिखिए।

16. अपह्नुति अलंकार का लक्षण लिखिए।

17. अपह्नुति में उपमेय का निषेध कितने प्रकार से होता है?

18. दृष्टान्त का एक वैशिष्ट्य लिखिए।

19. दृष्टान्त का लक्षण लिखिए।

26.8 समासोक्ति

लक्षण – विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में समासोक्ति का लक्षण –

समासोक्तिः समैर्यत्र कार्यलिंगविशेषणैः।

व्यवहारसमारोपः प्रस्तुतेऽन्यस्य वस्तुनः॥

टिप्पणी

अन्वय – समैः कार्यलिंगविशेषणैः प्रस्तुते अन्यस्य वस्तुनः यत्र व्यवहारसमारोपः सा समासोक्तिः।

शब्दार्थ – समैः = समान होने से (प्रस्तुत और अप्रस्तुत में तुल्य रूप में विद्यमान होने से), काव्यलिंगविशेषणैः = आलिंगन आदि क्रिया, पुंस्त्वादि लिंग से, नीलत्वादि व्यावर्तक धर्मरूप विशेषण से, प्रस्तुते = उपमेय पदार्थ में, अप्रस्तुतस्य = उपमानपदार्थ का, व्यवहारस्य = आचारण का, समारोप = सम्यक्तया आरोप, यत्र भवति = जहाँ होता है, सा समासोक्ति = वह समासोक्ति होता है।

सामान्यार्थ – समान क्रिया, समान लिंग अथवा समान विशेषण से उपमेय में उपमान का व्यवहार समारोप होता है वह समासोक्ति होता है। संक्षेप से उक्ति समासोक्ति होता है। आरोप में सादृश्य ही कारण होता है। वह सादृश्य, क्रिया लिंग या विशेषण पर आधरित होता है। प्रस्तुत के साथ अप्रस्तुत का साक्षात् सादृश्य न होता। वस्तुतः वाक्य में अप्रस्तुत का उल्लेख नहीं होता। लिंग आदि के सादृश्य के कारण अप्रस्तुत की प्रतीति होती है। अलंकार सर्वस्वकार के मत में केवल विशेषण सादृश्य का आश्रय होता है। जैसा कि कहा है – श्लिष्टविशेषणैरूपमानधीः समासोक्तिः। मम्मट ने भी कहा है – परोक्तिर्भेदकैः श्लिष्टैः समासोक्तिः।

उदाहरण के लक्षण समन्वय –

असमाप्तजिगीषस्य स्त्रीचिन्ता का मनस्विनः।
अनाक्रम्य जगत् कृत्स्नं नो सन्धयां भजते रविः॥

श्लोकार्थ – जिसको जीतने की इच्छा पूर्ण नहीं हुई है उस मनस्वी पुरूष को स्त्री की क्या चिन्ता होगी? जैसे सूर्य समस्त लोक को आक्रान्त किये बिना संध्या का आश्रय नहीं करता है। यहाँ सूर्य प्रस्तुत और नायक अप्रस्तुत है। संध्या प्रस्तुत, नायिका अप्रस्तुत। इसमें सूर्य में नायक का और संध्या में नायिका का व्यवहार समारोप है। यह समारोप लिंग सादृश्य के कारण है। यहाँ रवि तेजोमय है और संध्या काल विशेष है। रवि शब्द पुल्लिंग होने से नायक, संध्या शब्द स्त्रीलिंग होने से नायिका के व्यवहार समारोप होता है। अतः यहाँ समासोक्ति अलंकार है।

26.9 अतिशयोक्ति

भरत के परवर्ती सभी आचार्यों ने अतिशयोक्ति अलंकार को स्वीकार किया है। अतिशय, सम्भवातिरके या योग्यताविक्रम से कहा गया कथन अतिशयोक्ति है। वाग्भट्ट कहते हैं– 'अत्युक्तिः अतिश्योक्तिः'।

साहित्यदर्पण में लक्षण– ''सिद्धत्वेऽध्यवसायस्य अतिश्योक्तिर्निगद्यते''।

अन्वय – (प्रकृतस्य परात्मना) अधयवसायस्य सिद्धत्वे अतिशयोक्तिः निगद्यते।

शब्दार्थ – अध्यवसायस्य = प्रकृत के साथ अप्रख्रत (यथार्थवस्तु के साथ अयथार्थवस्तु) की अभेदप्रतीति, सिद्धत्वे = सिद्ध होने पर, अतिशयोक्तिः = अतिशयोक्ति अलंकार, निगद्यते = कहा जाता है।

सामान्यार्थ – विषय के साथ विषयी की अभेदप्रतीति का निश्चयात्मक होने पर अतिशयोक्ति अलंकार होता है। अयथार्थ वस्तु द्वारा यथार्थ वस्तु का निर्गीण अध्यवसाय होता है। अर्थात् उपमेय का निर्गीण कर उसके बाद उपमान के साथ उसका अभेदज्ञान अधयवसाय है।

विश्वनाथ कहते है – ''विषयनिगरणेन अभेदप्रतिपत्तिः विषपिणः अध्यवसायः।'' उत्प्रेक्षा अलंकार में सम्भावना अनिश्चित रूप होती है। अतिशयोक्ति में कवि प्रौढोक्ति के कारण सम्भावना निश्चितरूप होती है।

उदाहरण में समन्वय – **कथमुपरि कलापिनः कलापो विलसति तस्य तलेखष्मीन्दुखण्डम्।**
कुवलययुगलं ततो विलोलं तिलकुसुमं तदधः प्रवालमस्मात्।।

श्लोकार्थ – नायिका के मस्तक पर मयूरपुच्छ (पंख), उसके नीचे अष्ठमी का चन्द्रमा, उसके नीचे चंचल नीलोपल युगल नेत्र, उसके नीचे तिल का फूल और उसके नीचे मूंगा किस तरह शोभित हो रहा है।

इस श्लोक 'कथम्' यह प्रश्नसूचक शब्द नहीं है अपितु सम्भावना सूचक है। यहाँ नायिका के केश कलाप, मस्तक, नेत्रयुगल, नासिका, अधर आदि उपमेयों का कलापिकलापा आदि उपमानों के साथ अभेदज्ञान से अधयवसाय की सिद्धि होने से अतिशयोक्ति अलंकार है। केशपाश को मयूर पंख से, कपाल को अर्द्धचन्द्र से, नेत्रों को कमल से नासिका को तिल फूल से, औष्ठ को रक्तप्रवाल (मूंगा) से अध्यवसाय किया है। उपमेय और उपमान में भेद होने पर भी। उपमान का उत्कट प्रधानता से उपमेय का निर्गीण होने से अभेद प्रतीति होती है। अतिशयोक्ति के बहुत से विभाग है।

पाठगत प्रश्न 26.3

20. समासोक्ति का लक्षण लिखिए।
21. समासोक्ति का क्या अर्थ है?
22. मम्मट ने समासोक्ति का क्या लक्षण दिया है?
23. समासोक्ति में आरोप में क्या कारण है?
24. अतिशयोक्ति का लक्षण क्या है?
25. वाग्भट्ट के मत में अतिशयोक्ति क्या है?
26. अधयवसाय का अर्थ क्या है?

पाठसार

इस पाठ में अर्थालंकार की समालोचना की गई है। अर्थालंकार में शब्द परिवर्तन सहन होता है। अर्थ के कारण चमत्कार उत्पन्न होता है। उपमा आदि अर्थालंकार है। इसमें प्रायः सादृश्य

मूलकता होती है। विजातीय वस्तुओं के विरूद्ध धर्म को न कहकर यदि गुणक्रियागत सादृश्य 'इव' शब्द से प्रतिपादित होवे तो वह उपलंकार होता है। वह पूर्णोपमा और लुप्तोपमा भेद से दो प्रकार का है। इसके बाद अनन्वय अलंकार का प्रतिपादन किया है। एक ही वस्तु को उपमान और उपमेय माना जाये वहां अनन्वय अलंकार होता है। उसके बाद रूपक, दृष्टान्त, उत्प्रेक्षा और अपह्नुति अलंकारों का प्रतिपादित किया है। प्राय: ये सभी सादृश्यमूलक अलंकार है। इन अलंकारों के लक्षण के बाद उदाहरण से लक्षण समन्वय किया गया है। यहाँ साहित्यदर्पणकार के अनुसार लक्षण और उदाहरण दिये गये है। कुछ स्थलों पर मम्मटादि आचार्यों के मतों का भी उल्लेख किया गया है।

आपने क्या सीखा

- अर्थालंकार का सामान्य परिचय जाना।
- अर्थालंकारों का वैशिष्ट्य जाना।
- श्लोकों में अर्थालंकार का निर्णय कर पाना जाना।

पाठान्त प्रश्न

1. अर्थालंकार के विषय में लघु टिप्पणी कीजिए।
2. उदाहरण रखकर उपमा का वर्णन कीजिए।
3. उपमा के भेदों को प्रतिपाद्य करके परिचय दीजिए।
4. उदाहरण को सामने रखकर उपमा के प्रत्येक भेद का वर्णन कीजिए।
5. उदाहरण सहित उत्प्रेक्षा का वर्णन कीजिए।
6. उदाहरण सहित दृष्टान्त का वर्णन कीजिए।
7. उत्प्रेक्षा की विशेषताएँ बताइए।
8. अपह्नुति की विशेषताएँ बताइए।
9. उदाहरण सहित अपह्नुति का वर्णन कीजिए।
10. उदाहरण सहित रूपक का वर्णन कीजिए।
11. उदाहरण सहित समासोक्ति का वर्णन कीजिए।
12. उदाहरण सहित अतिशयोक्ति का वर्णन कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

26.1

1. जिस अलंकार में अर्थ को आश्रित करके कोई चमत्कृति होती है तो वह अर्थालंकार है।
2. उपमालंकार।
3. अर्थालंकार में सम अर्थक शब्दों का प्रयोग समर्थ होता है।
4. साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं वाक्यैक्ये उपमा द्वयोः।
5. दो प्रकार।
6. सा पूर्णा यदि सामान्यधर्म औपम्यवाचि च।
   उपमेयं चोपमानं भवेत् वाच्यम्।
7. लुप्ता सामान्यधर्मादेः एकस्य यदि वा द्वयोः।
   त्रयाणां वानुपादने श्रौत्यार्थी सापि पूर्ववत्।।
8. उपमानोपमेयत्वम् एकस्यैव तु अनन्वयः।
9. रूपकं रूपितारोपाद्वि विषये निरपह्नवे।
10. 1. उपमान, 2. उपमेय, 3. साधारण धर्म, 4. सादृश्यवाचक शब्द।
11. दो प्रकार।

26.2

12. सादृश्य मूलक उत्प्रेक्षा।
13. भवेत् सम्भावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना।
14. सादृश्य मूलक।
15. उपमेय का निषेध और उपमान का निषेध ऐच्छिक है।
16. प्रकृतं प्रतिषिधयान्यस्थापनं स्यादपह्नुतिः।
17. दो प्रकार।
18. सादृश्य वाच्य नहीं होता अपितु तात्पर्यगम्य होता है।
19. दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम्।

26.3

20. समासोक्तिः समैर्यत्र कार्यालिंग विशेषणैः।
    व्यवहारसमारोपः प्रस्तुतेखन्यस्य वस्तुनः।।

21. समासेन उक्तिः। संक्षेप कथन।

22. परोक्तिर्भेदकैः श्लिष्टैः समासोक्तिः।

23. सादृश्य।

24. सिद्धत्वेखधयवसायस्य अतिशयोक्तिर्निगद्यते।

25. अत्युक्तिः।

26. विषय निर्गीण से अभेदप्रतिपत्ति विषयी का अध्यवसाय है।

विशेष शब्दावली

उपमेय - सादृश्य का अनुयोगी उपमेय है। उपमीयते यत् तत् उपमेयम्।उप उपसर्ग पूर्वक मि धातु परिमापार्थक से यत् प्रत्यय होकर उपमेय शब्द बनता है। वर्णनीय विषय उपमेय है। जैसे चन्द्र इव मुखम्। जिसके साथ जिसकी तुलना की जाये वह उपमेय है। चन्द्र के साथ मुख की तुलना की गई है। अतः मुख उपमेय है। प्रायः तुलना महान् के साथ लघु वस्तु की जाती है। यहाँ चन्द्र अधिक सुन्दर है मुख की सुन्दरता की अपेक्षा। अतः लघु वस्तु उपमेय होती है।

उपमान - सादृश्य का प्रतियोगी उपमान होता है। उपमीयते सदृशीक्रियते येन तद् उपमानम्। वर्णनीय उपमेय का उपकारक उपमान होता है। जिस वस्तु की जिसके साथ तुलना की जाती है। वह उपमान होता है। 'चन्द्र इव मुखम्' में मुख की चन्द्र के साथ तुलना की गई। अतः चन्द्र उपमान है। प्रायः तुलना महान के साथ लघु वस्तु की जाती है। यहाँ चन्द्र अधिक सुन्दर है। मुख की सुन्दरता चन्द्र की अपेक्षा न्यून है। अतः महान वस्तु उपमान होती है।

साधारण धर्म - उपमेय और उपमान में संगति करने वाला धर्म साधारण धर्म होता है अर्थात् उपमेय और उपमान दोनों में जो समान धर्म रहता है वह साधरण धर्म होता है। जैसे 'चन्द्र इव मुखम् सुन्दरम्' यहाँ 'मुख और चन्द्र' मे समान धर्म सौन्दर्य है। यहाँ सौन्दर्य धर्म के आधार पर ही तुलना की जाती है। अतः दोनों में रहने वाला धर्म साधारण धर्म है।

औपम्यवाचक शब्द -उपमायाः भावः औपम्यम्। इव आदि उपमावाचक शब्द होते हैं। जिस शब्द से सादृश्य की स्पष्ट प्रतीति होती है। जैसे चन्द्र इव मुखम्। यहाँ चन्द्र के साथ मुख का साधर्म्य है। यह बात इव शब्द से स्पष्ट होती है। अतः इव उपमावाचक शब्द है।

बिम्ब - साक्षात् जो वस्तु है वह बिम्ब है। जैसे मुखम्। जैसे दर्पण में हम मुख देखते हैं। वह एक हमारा मुख है। दूसरे दर्पण में दूसरे का मुख है। साक्षात् मानवों का जो मुख है वह बिम्ब है। जिसकी प्रतिच्छवि दर्पण में है वह बिम्ब है।

प्रतिबिम्ब - किसी वस्तु से प्रतिच्छवि बनती है, वह प्रतिबिम्ब है जैसे दर्पण में स्थित मुख। जब हम दर्पण में मुख देखते हैं। तब दर्पण में मुख की कोई प्रतिच्छवि दिखाई देती है। वह ही प्रतिबिम्ब है।

प्रणिधानगम्य - इसका अर्थ है तात्पर्य से गम्यमान अर्थ। साक्षात् वाच्यार्थ नहीं होता है परन्तु तात्पर्य से अर्थ आता है।

27

रस परिचय

प्रिय छात्रों! इस पाठ में रस के विषय में आलोचना है। हमारे द्वारा प्रथम पाठ से आरम्भ करके विविध काव्यों का अध्ययन किया गया। उसी प्रकार हमारे द्वारा छन्द अलंकार आदि का परिचय भी प्राप्त किया। उनके बाद अब रस का परिचय प्राप्त करना चाहिए।

साहित्यशास्त्र के काव्यों में रस सबसे प्रधान है। शब्द, अर्थ, अलंकारादि रस रूप से ही काव्य व्यवस्थित होता है। यहाँ रस के विषय में विभिन्न मतों को संक्षेप में प्रदर्शन करते हैं। इसके अध्ययन से काव्यप्रकाश-रसगंगाधर आदि के अध्ययन में बहुत सहायता होगी। यहाँ अत्यन्त प्रधान स्थलों में प्राचीन ग्रन्थों के श्लोकों को उद्धृत करेंगे। सरल वाक्यों से प्राचीन ग्रन्थों के तात्पर्य प्रतिपाद्य है जिसने साहित्यशास्त्र से इतर शास्त्रों का छात्रों को सरलता से बोध हो सके।

उद्देश्य

यह पाठ पढ़कर आप समक्ष होंगे :

- प्रधान विषय रस को जान पाने में;
- रस सूत्र, रस का समन्वय और रसानुभव के स्वरूप समझ पाने में;
- रसानुभव स्वरूप में काव्य के लोकोत्तर साधारणीकरण सिद्धान्त समझ पाने में;
- उत्पत्तिवाद, अनुमितिवाद, भुक्तिवाद और अभिव्यक्तिवाद को समझ पाने में;
- करुण की आनन्दमय सिद्धि, रसों का अनुक्रम, शान्त रस की महिमा को जान पाने में और;
- इस सिद्धान्त का समग्र परिचय सिद्ध कर पाने में अध्ययन।

भूमिका

विद्वानों का अभिप्राय है कि काव्य या काव्यशास्त्र का परम फल रस होता है। रस का स्वरूप आनन्द ही है। सब प्राणियों के सब कार्य आनन्द या सुख में ही व्यवस्थित होते हैं। वैसे ही काव्य के सभी विषय रस में व्यवस्थित होते हैं। रस सभी में व्यवस्थित होता है, फिर अपनी पूर्णता के लिए अन्यत्र नहीं प्रवृत होते हैं। यह रस ही काव्य की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित है। दुग्ध से दहि, दहि से मक्खन, मक्खन से घृत, घृत से आगे कुछ नहीं होता है। अर्थात् दुग्धादि का अत्यन्तसार रूप घृत होता है उसी प्रकार काव्य में रस शब्दार्थादि सभी का सार भूत होता है। रस के प्रकाशन के लिए कवि काव्यों की रचना करते है। उसके अनुभव के लिए सहृदय जन काव्य में अनुरक्त होते हैं। जैसा कि भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में कहा है - ''नहि रसाद् ऋते कश्चिदर्थः प्रवर्तते।'' उसमें न केवल काव्य में अपितु गीतनृत्यादि सभी कलाओं में रस ही आत्मा है। यह साररूप समझना चाहिए। ''रस्यते इति रसः।'' उससे आनन्दमयी स्वाद को रस जानना चाहिए। इस रस का प्रथम निरूपण भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में प्राप्त होता है। नाट्यशास्त्र के छठे अध्याय में रस के विषय को विस्तार से प्रतिपादित किया गया है। उक्त विषय को आधार करके परवर्ती आलंकारिकों ने रस का निरुपण किया है। नाट्यशास्त्र की प्रसिद्ध और प्रामाणिक व्याख्या अभिनवभारती है। उसके रचयिता अभिनवगुप्त है।

रससूत्र का निरुपण

''विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रसनिष्पत्तिः'' यह रससूत्र नाट्यशास्त्र के छठे अध्याय में है। काव्य या नाटक से उपस्थापित राम सीतादि या समुद्रपर्वतमेघादि विभाव कहे जाते है। वह विभाव सहृदयों के हृदय में रति शोक आदि भावों को अलौकिक रूप से प्रबोधित करता है। इसलिए उसका विभाव नाम है। विभाव में विद्यमान कटाक्ष प्रसार, स्मित-भाषणादि चेष्टाविशेष अनुभाव कहे जाते हैं। उस अनुभाव से रामसीता आदि में विद्यमान दर्शन भाषण आदि क्रिया अनुभाव है। व्यभिचारी अर्थात् परिवर्तन या अस्थिर। व्यभिचारिभाव ही एक रसानुभव के मध्य में आते है और कुछ क्षण बाद चले जाते है। ये मानसिक भाव अस्थिर होते हैं। वे लज्जा संशय कुतुहलादि व्याभिचारिभाव है।

27.2.1 समन्वय

काव्य या नाट्य से उपस्थापित राम सीता आदि विभाव होते हैं। उनमें स्मित दर्शन संभाषणादि क्रियाओं का वर्णन होता है। उनके लज्जा हास संशय आदि व्यभिचारिभाव होते हैं। इस प्रकार रामसीता आदि लज्जा हास कुतुहलादि से युक्त और स्मित-दर्शन-भाषणादि क्रिया युक्त काव्य या नाटक से उपस्थिापित किये जाते हैं। इस प्रकार विभावादि का समुचित संयोग होने पर सहृदयों के हृदय में जो अलौकिक आनन्द अभिव्यक्त होता है वह रस है।

टिप्पणी

पाठगत प्रश्न 27.1

1. काव्य की आत्मा कौन है?
2. विभाव कौन है?
3. रससूत्र नाट्यशास्त्र के किस अध्याय में है?
4. किसके प्रकाशन के लिए कवि काव्य की रचना करते हैं?

27.3 रसानुभव का स्वरूप

रससूत्र में विभावादि के संयोग में रस निष्पन्न होता है यह देखा। वहाँ रस किसमें रहता है इस विषय में जिज्ञासा होती है तब आलंकारिक कहते हैं।

व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसः स्मृतः। काव्यप्रकाश 3/2

विभावानुभावव्यभिचारिभावों द्वारा अभिव्यक्त सहृदयों में विद्यमान रतिशोकादि स्थायी भाव ही रस होता है। सहृदय के मन में वासनारूप से अनेक भाव हैं। वे रति हास शोकादि है। वे रसत्व प्राप्ति पर्यन्त स्थिर होते हैं। अतः वे स्थायीभाव कहे जाते हैं। वे नौ हैं –

रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधेत्साहौ भयं तथा।
जुगुप्सा विस्मयश्चेत्थमष्टौ प्रोक्ताः शमोऽपि च॥ साहित्यदर्पण 1/175

इस श्लोक में ये नौ स्थायीभाव हैं – रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, विस्मय और भय।

अभिष्ट विषय में मन के अनुराग से उत्पन्न प्रमोद ही रति है, वाणी के विकार से उत्पन्न चित्त के विकास को हास कहते हैं, इष्ट नाश के कारण उत्पन्न मन का दुःख विशेष शोक है। इच्छाभंग प्रतिकूल होने में उत्पन्न मन का तीक्ष्ण गुण ही क्रोध है। कार्यारम्भ आदि में उत्कट आवेश का नाम उत्साह है। व्याघ्रादि के दर्शन से अत्यन्त अनर्थ विषयक चित्त की दुर्बलता भय है। दोषादि दुर्विषय के दर्शन से उत्पन्न हेय बुद्धि जुगुप्सा है। लोकातीत अपूर्व दृष्ट विषयों में आश्चर्यरूपी चित्त का विस्तार विस्मय होता है। सम्पूर्ण बाह्य जगत के अभाव में उत्पन्न अपने विश्राम सुख को शम कहते हैं।

इन भावों का अनिश्चयात्मक ज्ञान संशय होता है। जैसे 'स्थाणु वा पुरुषो वा।' यहाँ यह वस्तु स्थाणु है या पुरुष है यह ग्रहण होना संशय है।

लौकिक जीवन सुख और दुःखात्मक होता है। उनको ही काव्यमार्ग से अनुभाव लोकोत्तर होकर परमास्वादरूपी रस होता है। उन भावों का अनुभव काव्य में कैसे अलौकिक होता है। इस संदेह का समाधान किया जाता है कि प्रथम – उनका लोक जीवन में अनुभव कैसे लौकिक प्रदर्शित होते हैं। लौकिक जीवन में सभी विषय मेरे अथवा मेरे नहीं है। इस प्रकार दो प्रकार की बुद्धि

से ग्रहण किये जाते हैं। यह वस्तु मेरी है, यह वस्तु मेरी नहीं है, यह वस्तु अन्य की है, यह वस्तु अन्य की नहीं है, इस प्रकार ग्रहण होते हैं। सभी जगह अपना और दूसरे के सम्बन्ध को स्वीकार या परिहार देखा जाता है। इस प्रकार जो कुछ वस्तु ग्रहण की जाती है उस वस्तु का ज्ञान या अनुभव लौकिक कहा जाता है। लौकिक अनुभव चार प्रकार के ज्ञान से होते हैं, उसे आलंकारिक कहते हैं। वे सम्यक् ज्ञान, मिथ्याज्ञान, संशयज्ञान और सादृश्य ज्ञान ये चार ज्ञान होते हैं। ये लोक में व्यवहार के साधन होते हैं।

1. **सम्यक् ज्ञानम्** - रामोऽयम् वृक्षोऽयम् इत्यादि ज्ञान यथार्थज्ञान कहा जाता है, वह प्रत्यक्षादि प्रमाणों से लब्ध होता है।

2. **मिथ्याज्ञान** - यह भ्रमात्मक ज्ञान होता है। जैसे मन्द अन्धकार में स्थित रस्सी को देखकर उसके स्थान पर सर्प की प्रतीति मिथ्या ज्ञान है। स्थाणु को देखकर पुरुष का प्रतीति होती है। इस प्रकार अन्यथा ग्रहण को मिथ्याज्ञान कहते हैं।

3. **संशय ज्ञान** - विषय को अनिश्चयात्मक ज्ञान होता है वह संशय है। जैसे स्थाणुर्वा पुरूषो वा - यह पुरूष या स्थाणु? ऐसा ग्रहण होने पर अनिश्चय होता है। इस अनिश्चय ज्ञान को ही संशय कहते हैं।

4. **सादृश्यज्ञान** - पूर्व ज्ञात पदार्थ के सादृश्य के बल से अज्ञात विषय में जो ज्ञान होता है उसे सादृश्य ज्ञान कहते है। जैसे- ''गौः इव गवयः'' गाय को जानने वाला पुरूष न जानने वाला पुरूष को किसी पूर्व अदृष्ट नीलगाय को सादृश्य बल से समझता है। यह सादृश्य ज्ञान है।

इन ज्ञानों से सभी व्यवहार संभव होते हैं। किन्तु काव्य के पदार्थों का ग्रहण इन ज्ञानों से नहीं होता। चित्रतुरग न्याय से काव्य का ग्रहण होता है। चित्र में लिखित अश्व न यथार्थ है, ना ही अश्व से भिन्न है और न ही अश्वसदृश है, न अश्व है अथवा उससे भिन्न है यह प्रतीयमान है। किन्तु यह अश्व है। यह ज्ञान होता है। इस प्रकार के ज्ञान को आहार्यज्ञान कहते हैं। किसी प्रयोजन के कारण औचित्य से इसमें वह बुद्धि हो तो वह आहार्यज्ञान होता है। वह ज्ञान विवेकपूर्वक होता है न कि रज्जुसर्प ज्ञान के समान। रस्सी में जो सर्पज्ञान होता है वह यथार्थ का ग्रहण नहीं है। आहार्य ज्ञान में तो यथार्थज्ञान होने पर भी अन्यप्रयोजन सिद्धि के लिए यह नहीं है। ऐसा ज्ञान विवेकपूर्वक होता है। जैसे एक वन में एक सिंह था। वह वनराज होना चाहता था। उसके लिए प्राणियों के विश्वास को प्राप्त करने के लिए एक सभा का आयोजन किया। वहाँ सिंह वनराज पद नहीं चाहता तो प्राणियों की सभा भी नहीं आयोजित की, क्योंकि सिंह कोई प्राणी है न कि विवेकी मनुष्य। मनुष्य जो कार्य करता है वह मृग आदि नहीं करते। यह यथार्थ हमारे द्वारा जाना जाता है। फिर भी सिंह के समान व्यवहार स्वीकार किया जाता है और आहार्यज्ञान के बल से ही स्वीकार किया जाता है। इस प्रकार से ही आहार्यज्ञान से पंचतन्त्रादि कथाओं में विस्तार से नीतिबोध सिद्ध होता है। अतः काव्य के पदार्थों अथवा विभाव आदि आहार्य ज्ञान से विभावादी की अलौकिकता सिद्ध होती है।

टिप्पणी

27.4 साधारणीकरण

विभावादि के विषय में और स्वयं के विषय में सहृदय के देशकालादि सम्बन्ध स्वकीय परकीय स्वरूप के सम्बन्ध के स्वीकार और परिहार का अभाव साधारणीकरण होता है। अतः साधारण विभावादि ये मेरे, ये मेरे नहीं, ये पर के, ये पर के नहीं है, इस प्रकार के स्वयं के सम्बन्ध और पर के सम्बन्ध के बिना ही जाने जाते है। देश-काल स्वकीय परकीय आदि सम्बन्ध लोक में पदार्थों के आवरण रूप से रहते है। उस प्रकार का आवरण जब दिखाई नहीं देता तब पदार्थ साधारण होता है। सम्बन्धावरण होता है तो असाधारण ही होता है। असाधरण विशेषरूप परिमित है। लोक में प्रायः सभी पदार्थ असाधरण ही प्रतीत होते हैं। इससे एक पुरुष से सम्बद्ध पदार्थ अन्य द्वारा अनुभव करने व आस्वादित करने योग्य नहीं होते और न ही एक की पत्नी अन्य द्वारा देखी जाती है। इस प्रकार सभी पदार्थ सम्बन्धवरण से सहित और विशेष होते हैं।

काव्य में विभावादि विशेष धर्म के बिना ही प्रतीत होते है अर्थात् साधारण ही प्रकाशित होते हैं। अतः उनमें किसी का सम्बन्ध नहीं होता। सम्बन्धरूप आवरण टूट जाता है। अतएव काव्य में सभी विभावादि पति, पत्नी पुत्रादि रूप सभी के द्वारा देखने और आस्वादित करने के लिए समर्थ होते हैं। श्रीकृष्ण राधादि का चुम्बन आलिंगनादि भी सभी के देखने योग्य होता है। किन्तु जीवन में कदापि नहीं होता। अतः आलंकारिक कहते हैं - विभावादि की साधारणतया प्रतीति अलौकिक प्रतीति है। विभावादि के विषय में आहार्यज्ञान है, उससे साधारणीकरण और सहृदयतत्व महिमा सिद्ध होती है। विभावादि जब साधारणतया प्रतीत होते हैं। तब सहृदयों के हृदय विभावादि में तन्मय होता है। जब चित्त में सत्त्वगुण व्याप्त होता है रजोगुण और तमोगुण नीचे जाते हैं। उससे चित्त का मलरूप अज्ञान तत्काल निवृत हो जाता है। शुद्ध सत्त्वमात्र प्रकाशित होता है। अज्ञान ही आत्मा के स्वरूपानन्दानुभव में प्रतिबन्धक होता है। अज्ञान यहाँ मुख्यतया अन्यथा ज्ञान ही है और वह मैं मनुष्यकर्ता हूँ मुझे अनेक कार्य करने हैं। उन कार्यो के फलों का भोग करना चाहिए, इत्यादिरूप होता है। उस अज्ञान द्वारा आनन्दात्मक आत्मा का मूलरूप अच्छादित होता है। इससे संसार आरम्भ होता है। इस प्रकार अज्ञान लौकिक सम्बन्ध के ग्रहण से रहता है। साधारणीकरण होने पर वह अज्ञान तत्काल निवृत्ति को प्राप्त होता है। जैसे विभावादि के विषय में साधारणीकरण होता है वैसे सहृदय का अपने विषय में भी साधारणीकरण होता है। तब अज्ञान की तत्काल निवृत्ति होती है। तब पूर्व में ही विभावादि से प्रबोधित और साधारणीकृत रति आदि स्थायी भाव चिदानन्दोपहित रस कहा जाता है। इस प्रकार विभावादि से प्रबोधित सहृदय महिमा से साधारणीकृत रति आदि स्थायी भाव ही रस है। यह अभिनवगुप्त-मम्मटादि का मत है।

जगन्नाथ के मत में तो सहृदयत्व की महिमा से विभावादि साधारण होते हैं। उनके द्वारा प्रबोधित इत्यादि स्थायीभाव भी साधारण होता है। तब साधारणीकृत द्वारा चित्तवृत्ति अपने स्थायीभाव से उपहित अपना भी साधारण सम्पादित करती है। अतः लौकिक कर्तृत्वादि सम्बन्धवरण के बिना ही रहते हैं। इस प्रकार स्वरूपप्रतिबन्ध निवृत्ति से आत्मा रत्यादि स्थायीभाव से उपहित चिदानन्दलक्षण अपने को अपना ही समझती है। उस साधारणीकृत द्वारा रति आदि संवलित अज्ञानावरणरहित आत्मा ही रस रूप में स्थित है। वेद में भी संकलित है

टिप्पणी

''रसो वै स:'', ''रसं ह्येवायं लब्धवा आनन्दी भवति'' (तैत. उप. ब्रह्मा. वल्ली) रस ही आत्मा है। वह रस अर्थात् आत्मा को प्राप्त करके आनन्दित होती है।

पाठगत प्रश्न 27.2

6. रस कौन है?
7. स्थायीभाव कितने हैं?
8. आहार्यज्ञान क्या है?
9. अज्ञान क्या है?
10. व्यभिचारिभाव कौन है?

27.5 रससूत्र विवरण में मतभेद

रससूत्र के विवरण में चार वाद प्रसिद्ध हैं - वे अभिनवभारती में उपलब्ध होते हैं। रस उत्पद्यते इति भट्टलोल्लट:। रस अनुमीयते इति श्रीशंकुक:। रसो भुज्यते इति भट्टनायक:। रस: अभिव्यज्यते इति अभिनवगुप्त। इन सब का संक्षेप में अवलोकन करते हैं।

उत्पत्तिपाद - ''विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रसनिष्पत्ति:'' यह भरतमुनि कृत रससूत्र है। यहाँ भट्टलोल्लट ने निष्पत्ति पद का अर्थ उत्पत्ति प्रतिपादित किया है। इनके मत में विभावादि स्थायीभावादि का रस के मध्य में उत्पाद्य-उत्पादक भाव सम्बन्ध है। इसके मत में रस अनुकार्य में होता है। नट से अभिनय द्वारा उसका अनुकरण किया जाता है वह अनुकार्य है। जैसे - राम, कृष्ण इत्यादि अनुकार्य हैं। अनुकार्य में स्थित रस नट में रामत्वादि अनुसन्धन के बल से प्रतीत होता है। उससे मुख्यतया अनुकार्य रामादि में रस होता है। गौणरूप से वह रस नट में होता है। यह भट्टलोल्लट का मत है।

अनुमितिवाद - अनुमितिवाद के प्रतिपादक श्रीशंकुक है। ये भट्टलोल्लट में मत में दोष को खोजते हैं। रस: अनुकार्य रामादि में स्वीकार करते हैं, तो वह रामादि आज नहीं है। यदि है तो भी रंगमंच पर नहीं है। इसलिए अनुकार्य में रस उपयुक्त नहीं है। अत: रस अनुमित होता है, यह स्वीकार करना चाहिए। लोक में पर्वत पर दिखाई देने वाले धूम को देखकर पर्वत में आग है यह निश्चय होता है। अर्थात् समुचित कारण को समझकर आग का अनुमान किया जाता है। इसी प्रकार रामसीता आदि का अनुकर्ता नट में चुम्बनालिंगन आदि अभिनयरूप चेष्टाओं को देखकर वह-वह चेष्टानुगुण रस नट में सामाजिक अनुमिति करते हैं। यहाँ नट में रस का अनुमान करके सहृदयों को आनन्द का अनुभव होता है। इस प्रकार श्रीशंकुक के मत में रस अनुमान से लभ्य है। इसलिए रससूत्र में निष्पत्ति पद का अर्थ अनुमिति सिद्ध करते हैं।

भुक्तिवाद - भुक्तिवाद के प्रतिष्ठापक भट्टनायक हैं। ये सर्वप्रथम श्रीशंकुक के मत में दोष खोजते हैं। यदि नट में रस स्वीकार किया जाये तो काव्यादि में सहृदयों को आनन्द कैसे हो

सकता है। काव्यादि में आनन्द यदि सहृदय का न होता है तो सहृदय काव्यादि में किसलिए प्रवृत होते हैं। नट में अनुमित रस लौकिक होता है। उसका साधरणीकरण नहीं है। इस कारण सक शृंगारिकरस प्रधान काव्य को सभ्यजनों को जुगुप्साकारक (घृणा का कारक) होगा। अनुमान पक्ष में तो हेतु व्यभिचारिभाव से होता है। यह अन्य दोष भी श्री शंकुक में मत में है। इसलिए भट्टनायक भुक्तिवाद का प्रतिपादन करते हैं। उनके मत में जो काव्य में अभिधा से काव्यार्थ बोध होता है। उसके बाद काव्य के भावकत्व व्यापार से विभावादि का साधारणीकरण होता है। उसके बाद सहृदय को सत्त्वोद्रक होता है। जो रसानुभव योग्यता को मन में निष्पादित करता है। तब चित्तविक्षेपकारक रज और तम गुण नहीं रहते। उसके बाद चिदानन्तरूपी आत्मा अपने में विश्रान्त होती है। वह विश्रान्ति रत्यादिस्थायिभाव सहित होकर भोगीकरण व्यापार से भोग करती है। इस कारण उस के मत में निष्पति का मुक्ति अर्थ है।

भट्टनायक के मत में दोष

विभावादि का साधारणीकरणार्थ को काव्य में शब्दों का ही भावकत्व व्यापार स्वीकार किया, वह उचित नहीं। भावकत्व सहृदय हृदय धर्म होता है न कि शब्दधर्म।

आत्मविश्रान्तिरूप को रस के आस्वादन के लिए भोजकत्व व्यापार स्वीकार किया है। उसकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि घट से आच्छादित दीप को देखने के लिए घट का अपसारणमात्र कार्य है। घटापसारण करने पर प्रज्वलित दीप स्वयं ही प्रकाशित होता है। घटापसारण के बाद दीप प्रदर्शन यह दूसरा व्यापार अवशिष्ट नहीं होता। चैतन्यरूप आत्मा के आनन्द के अनुभव में प्रतिबन्धकनिवारण जब होता है तब स्वयं को प्रकाशित करके आत्म विश्रान्ति सुख को आत्मा से ही अनुभूत हो जाता है।

भट्टनायक के मत में गुण

रस सहृदयनिष्ठ होता है यह अतीव समुचित है। रस प्रक्रिया में प्रधान कीलकस्थान विभावादि का साधारणीकरण है। उसके निरुपण में भट्टनायक का महान योगदान है।

अभिव्यक्तिवाद - अभिव्यक्तिवाद के प्रतिष्ठापक अभिनवगुप्त है। आनन्दवर्धन का मत था कि काव्य और रस के मध्य व्यंग्य-व्यंजकभाव है। इसका अच्छी प्रकार से स्पष्टीकरण अभिनवगुप्त ने की है। इनके मत में रस निष्पत्ति का अर्थ रस अभिव्यक्त होता है। काव्य या नाटक से विभावादि की उपस्थापना होती है। सहृदय की महिमा से विभावादि का साधारणीकरण होता है। साधारणीकरण हुए विभावादि से सहृदय के रति आदि स्थायिभावों का साधारणीकरणपूर्वक ही प्रबोधन (जागरण) होता है। साधारणीकरण हुए स्थायिभावों में प्रमाता भी साधारण होता है अर्थात् अज्ञान की तत्काल निवृत्ति होती है। अज्ञान ही यहाँ लौकिक सम्बन्धरूप मैं कर्ता, ये मेरे हैं, ये मेरे नहीं, यह अन्यों का है आदि लक्षित होते हैं। जिससे प्रमाता असाधारण और परिमित होता है। उस अज्ञान की तत्काल निवृत्ति में सम्बन्धवरण रहित रति आदि स्थायिभाव आत्मस्वरूप चिदानन्द से विषयीकृत होता है। इस प्रकार साधारणीकृत चिदानन्द विषयीकृत स्थायीभाव अभिव्यक्त होते हैं और वह आनन्दरूपी रस होता है।

टिप्पणी

रस अभिव्यक्तिवाद से रससिद्धान्त प्रतिष्ठित हुआ। इसको जगन्नाथ ने चरमपरिष्कार किया। अभिनवगुप्त-मम्मटादि के मत में चिदानन्दसंवलित अज्ञानावरणरहित स्थायीभाव रस होता है। जगन्नाथ के मत में रत्यादिस्थायीभाव सहित किन्तु अज्ञानावरण सहित आत्मा ही रस होता है। अन्य प्रक्रिया जगन्नाथ में मत में अभिनवगुप्त आदि के समान है।

पाठगत प्रश्न 27.3

11. रस अनुकार्य में है, यह किसने कहा?
12. अनुकर्ता में रस है, यह किसका मत है?
13. भोगीकरण व्यापार कहाँ स्वीकृत है?
14. साधारणीकरण को सर्वप्रथम किसने निरुपित किया?
15. अभिव्यक्तिवाद के प्रतिष्ठापक कौन है?
16. आनन्दवर्धन के मत में रस कैसा है?
17. अभिनवगुप्त के मत में भोगीकरण कहाँ नहीं है?
18. अभिनवगुप्त के मत में साधारणीकरण कैसे सिद्ध होता है?

27.6 करुणरस के विषय में आक्षेप और समाधान

शोक स्थायीभावात्मक करुण रस होता है। शोक जिसका स्थायिभाव हो तो वह आनन्दमय नहीं हो सकता। रस रस्यते या आस्वाद्यते परिभाषा से रस पद व्यवहार करुणयुक्त नहीं होता, यह आक्षेप किया जाता है। उसका समाधान करते हैं कि करुण आनन्दमयी है इसके लिए सहृदयों का अनुभव प्रमाण है। यदि करुणरस दु:खरूपी करुणरस प्रधान रामायणादि काव्य लोक में दु:ख के कारण होते, किन्तु उन काव्यों में लोक की इच्छापूर्वक प्रवृत्ति देखी गई है। अत: करुण आनन्दरूपी ही है। रस प्रक्रिया में साधारणीकरण स्वीकार करने से करुण दु:खरूपी नहीं है यह सिद्ध होता है।

27.7 रसों का क्रम

शृंगार हास्य करुणरौद्रवीरभयानका:।
बीभत्सोऽद्भुत इत्यष्टौ रसा: शान्तस्तथा पुन:॥ सा.द. 3/76

यहाँ रसो का क्रम विद्यमान हैं। भरतमुनि भी इस क्रम को कहते हैं। शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत, शान्त ये नौ रस क्रमश: है। अभिनवगुप्त ने अभिनवभारती में इनके क्रम के महत्व का वर्णन किया है।

टिप्पणी

उनमें से रति सभी प्राणियों की स्वाभाविकी और बलवती प्रिया होती हैं उससे सर्वप्रथम रतिस्थायिभावक शृंगार है। वह काम प्रधान है। हास्य सर्वदा शृंगार अनुरागी होती है। इसलिए वह द्वितीय है। सुख का विरोधी शोक:। इसलिए शोकस्थायीभाव करुण तीसरा है। करुण का निमित्तभूत क्रोध है इसलिए क्रोध स्थायीभावात्मक रौद्ररस चौथा है। रौद्र अर्थप्रधान अर्थात् जीवन के साधनभूत द्रव्यों के कारण पैदा होता है। जीवन साधनभूत सभी द्रव्य अर्थ कहे गये है। काम और अर्थ का मूल धर्म है। इसलिए धर्मप्रधान वीररस पांचवा है। उत्साह स्थायिभावात्मक वह भीतों को अभय प्रदान करता है। अत: वीर के बाद भयानक है। भयानक रस का विभावादि के साधारण्य बीभत्स का होता है। इसलिए भयानक के बाद बीभत्स रस होता है। वीररस का अन्तिम परिणाम विस्मय होता है। इसलिए अन्त में विस्मय स्थायिभाव अद्‌भुत रस है। इस प्रकार आठ रस धर्मार्थकामरूप त्रिवर्ग के प्रतिनिधि रूप से व्यवस्थापित है। त्रिवर्ग तो प्रवृत्ति धर्म से सिद्ध होते हैं। उसके विरूद्ध निवृत्ति धर्म होता है। उससे अपवर्ग अर्थात् मोक्ष सिद्ध होता है। इसलिए सबसे अन्त में मोक्ष फल दाता शान्त रस है।

27.8 शान्तरस का महत्त्व

अलंकारशास्त्र में शान्तरस का परम उच्च स्थान है। शान्तरस के विषय में भरतमुनि ने कहा है – ''अथ शान्तो नाम शमस्थायिभावात्मको मोक्ष प्रवर्तक:। स तत्त्वज्ञान वैराग्य आशयशुद्ध्यादिभि. भावै: समुत्पद्यते।'' अर्थात् शमस्थायिभाव से शान्तरस परिपक्व होता है। शम भाव अपने आत्मविवेकरूप, तत्व ज्ञान और वैराग्य से सिद्ध होता है। शम शान्ति या उपशम को कहते हैं। अर्थात् संसार में जो कुछ पदार्थ द्वारा प्राप्त हुए सुख या दु:ख से मन में यदि क्षोभ नहीं होता तो वह शम भाव है। संसार और आत्मा का यथार्थबोध तत्त्वज्ञान कहा जाता है। तत्त्वज्ञान की सिद्धि और वैराग्य से संसार में इष्ट की प्राप्ति के लिए कर्त्तव्य शेष नहीं रहते हैं। इस प्रकार वैराग्य का अवलम्बन करके आत्मज्ञान रूप ब्रह्मानन्द आत्मा में प्राप्ति करने योग्य होती है। शम स्थायिभात्मक शान्तरस नित्यानित्यविवेक, वैराग्य, ध्यान, ब्रह्मचिन्तन आदि भावों से सिद्ध मोक्ष के प्रति प्रेरणा पैदा होती है। इसलिए शुक-शुक्राचार्यादि के जीवनचरित को मुमुक्ष भी आस्वादन करते हैं। जैसे आत्मा में सभी लोक लीन होते हैं उसी प्रकार सभी भाव अर्थात् रस शान्त में लीन होते हैं। भरतमुनि ने कहा है –

स्वं स्वं निमित्तमासाद्य शान्ताद् भाव: प्रवर्तते।
पुनर्निमित्तापाये तु शान्त एवं प्रलीयते॥

अर्थात् रति, हास, शोकादि निमित्तों के आश्रय लेकर शृंगार हास्य करुणादि रस अभिव्यंजित होते हैं। पुन: रतिहासादि निमित्तो के अभाव में वे शान्त में ही लीन होते हैं। इसलिए कहते हैं –

टिप्पणी

भावा विकारा रत्याद्याः शान्तस्तु प्रकृतिर्मतः॥

अर्थात् शृंगारादि आठ रस शान्त से उत्पन्न होते है जैसे आत्मा से जगत् के भाव उत्पन्न होते हैं। जैसे वेदान्तियों के परमात्मा उत्पन्न नहीं होता वैसे शान्त रस उत्पन्न नहीं होता। अतः वह प्रकृति कहा जाता है।

रसतालिका

रस	स्थायीभाव	व्यभिचारिभाव	वर्ण	देवता
शृंगार	रति	लज्जा, हास, चिन्ता, कुतुहल	श्याम	विष्णु
हास्य	हास	निद्रा, आलस्य आदि	श्वेत	प्रमथगण
करुण	शोक	मोह, विषाद, ग्लानि, स्मृति	कपोतवर्ण	यम
रौद्र	क्रोध	मद, अमर्ष, मोह आदि	रक्तवर्ण	रूद्र
वीर	उत्साह	धृति, मति, गर्व, स्मृति आदि	हेम, गौरवर्ण	इन्द्र
भयानक	भय	भ्रान्ति, शंका, अवस्मार आदि	कृष्ण	काल
वीभत्स	जुगुप्सा	मोह, आवेग, अवस्मार, व्याधि	नील	महाकाल
अद्भुतः	विस्मयः	वितर्क, भ्रान्ति, आवेग, हर्ष आदि	पीत	ब्रह्मा
शान्त	शम	निर्वेद, धृति, मति, दया आदि	अतिधवल	नारायण

पाठगत प्रश्न 27.4

19. हास्य किसका अनुगम करता है?
20. धर्मप्रधान रस कौन है?
21. करुण के बाद रौद्ररस कहाँ से आता है?
22. मोक्ष प्रवर्तक रस कौन है?
23. शान्त का स्थायीभाव क्या है?
24. विकृति रस कितने है?
25. शान्तरस कैसे प्रकृति रस है?
26. भाव कब शान्त में विलीन होते है?

पाठसार

काव्य और काव्यशास्त्र का परम उच्च विषय रस होता है। रस के अनुभव से कवि काव्य को

रचते हैं। उस काव्य से सहृदय रस का अनुभव करते हैं। काव्य के शब्द अर्थ अलंकारादि सभी अंश रस में परिपूर्ण होते हैं। रस अपने में समाप्त है। वह काव्यात्मा है। उसकी निष्पत्ति भरतमुनि ने निरूपित की। भरत का सरसूत्र है – विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रस निष्पत्तिः। काव्य या नाटक से समर्पित विभावादि सहृदयता के बल से साधारण होते हैं। साधारणीकरण से वे काव्य के पदार्थ लोकोत्तर होते हैं। इस प्रकार साधारण और अलौकिक होते हुए विभावादि सहृदय जनों के रति आदि स्थायीभावों को उद्‌बुध करते हैं। तब रत्यादि स्थायीभाव भी साधारण होकर जागरित होता है। साधारणीकरण के बल से लौकिक सम्बन्ध वहाँ प्रतीत नहीं होते। उसके बाद आत्मानन्द का प्रतिबन्धक अज्ञान तत्काल निवृत्त हो जाता है। तब प्रतिबन्ध का भाव से स्वयं प्रकाशशील आनन्दरूपी आत्मा से विभावादि से अभिव्यक्त स्थायीभाव प्रकाशित होता है। साक्षात् आत्मा से प्रकाश होता है। अतः स्थायीभाव आनन्दमय होता है। इस प्रकार विभावादि से अभिव्यक्त रत्यादि स्थायीभाव रस है। यह अभिनवगुप्त एवं मम्मटादि का मत है। जगन्नाथ ने तो इत्यादि स्थायिभाव मुक्त आवरण रहित आत्मा को ही रस कहा है। वहाँ प्रमाण श्रुति वेद है। ''रसो वै रसः, रसं ह्येवाय लब्धवा आनन्दी भवति।''

रस व्याख्यान में चार वाद् प्रसिद्धः है। वे क्रमशः है – उत्पत्तिवाद, अनुमितिवाद, भुक्तिवाद, अभिव्यक्तिवाद। उन वादों के वक्ता क्रमशः भट्टलोलट, श्रीशंकुक, भट्टनायक, अभिनवगुप्त है। स्थायीभाव नौ हैं उनके रस भी नौ है। उन में शृंगार से अद्‌भुत पर्यन्त आठ रस धर्मार्थकाम के प्रतिनिधिरूप है। शान्त मोक्ष का प्रतिनिधि होता है।

आपने क्या सीखा

- रस का सामान्य परिचय।
- रससूत्र, रस का समन्वय और रसानुभव को जाना।
- साधारणीकरण सिद्धांत को जाना।
- चार वेदों को जाना।
- शान्त रस की महिमा को जाना।

पाठान्त प्रश्न

1. रससूत्र की व्याख्या कीजिए।
2. साधारणीकरण का निरुपण कीजिए।
3. काव्य में पदार्थ का लोकोत्तरत्व कैसे सिद्ध होता है?
4. भट्टनायक मत में गुणदोषों की आलोचना कीजिए।
5. अभिव्यक्तिवाद को स्पष्ट कीजिए।

टिप्पणी

6. करुण आनन्दमय रूप है, स्पष्ट कीजिए।

7. शान्त रस के महत्व का प्रतिपादन कीजिए।

8. उत्पत्तिवाद और अनुमितिवाद में कौन से दोष हैं?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

27.1

1. रस।

2. जिससे रत्यादि स्थायी भाव प्रबोधित होते है वह विभाव है।

3. छठे अध्याय में।

4. रस के प्रकाशन के लिए।

5. रस्यते आस्वाद्यते इति रसः।

27.2

6. विभावादिभिः अभिव्यक्तः इत्यादिः स्थायिभावो रसः।

7. नव (नौ)।

8. यत्किञ्चित् प्रयोजनव शात् विवेकपूर्विका अतस्मिन् तद्बुद्धिः।

9. मैं कर्त्ता मेरे कार्य है इत्यादि अन्यथा ग्रहण को अज्ञान कहते हैं।

10. व्यभिचरणशील अर्थात् अस्थिरस्वभाव व्यभिचारिभाव।

27.3

11. भट्टलोल्लटः।

12. श्री शंकुक।

13. रसानुभवार्थ को।

14. भटनायक ने।

15. अभिनवगुप्त ने।

16. रस अभिव्यंग्य।

टिप्पणी

17. रस स्वप्रकाश के कारण।

18. सहृदयत्व की महिमा से।

27.4

19. शृंगार का अनुगम।

20. वीर रस।

21. शोक निमित्त क्रोध।

22. शान्त।

23. शम।

24. आठ।

25. सभी रस शान्त में लीन होते हैं।

26. निमित्त के नष्ट होने पर शान्त में लीन होते हैं।

अवलोकनीय ग्रन्थ

- साहित्यदर्पण – तृतीयाध्याय
- काव्यप्रकाश – तृतीयाध्याय
- रसगंगाधर – प्रथमानन
- अभिनवभारती – षष्ठाध्याय

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

उच्चतर माध्यमिक पाठ्यक्रम

संस्कृत साहित्य

औचित्य–

संस्कृत में काव्य सम्पदा सागर के सामन अपार तथा अमूल्य है। इसमें हमारी सनातन ज्ञान राशि तथा उससे ओतप्रोत जीवन प्रतिबिम्बित होते हैं। कवियों को काव्यों के, अलङ्कार शास्त्रों को पढ़ने में छात्रों की भूमिका अपेक्षित होती है। काव्य राशि का मूल स्वरूप वेद में ही दिखाई देता है। साहित्य में प्रवेश के लिये वेदादि वाङ्मय का सामान्य ज्ञान आवश्यक होता है। साथ ही यह भी जान लेना होता है कि वेदों के द्वारा बताये गये तत्वों को ही साहित्य प्रकट करते हैं। वेद के द्वंद्व षड्ग अङ्ग हैं। इन छह अङ्गों का ज्ञान भी सामान्यतया आवश्यक होता है। वेद तथा काव्यों के मध्य पुराण साहित्यों का स्थान है। अतः पुराणों का भी सामान्य ज्ञान आवश्यक होता है। और वह यहां है। इस प्रकार वेदों का तथा पुराणों का सामान्य ज्ञान प्राप्त करके ही काव्य में प्रवेश होता है।

संस्कृति वह सुपरिष्कृत जीवनपद्धति है जिससे यथाक्रम आत्मा का उद्धार होता है। भारतीय सनातन संस्कृति चार पुरुषार्थों की चर्चा करती है। चार पुरुषार्थ धर्म, अर्ध, काम, मोक्ष हैं। काम का अभिप्राय लौकिक जीवन में संतुष्ट होना अथवा सुख की प्राप्ति है। अर्थ से अपेक्षित सुख साधनों की प्राप्ति हेतु कल्पिक वस्त्र, आहार, धन, क्षेत्र आदि पदार्थों का संकलन है। धर्म से आशय होता है अर्थों का प्राप्त करने के लिये उनसे सुख प्राप्त करने के लिये शास्त्रोक्त विधि का आचरण। मोक्ष शब्द अनन्त शाश्वत आनन्द का परिचायक है। इन सबके यथावत् ज्ञान के लिये एक मात्र वेद ही प्रमाण है।

कवि का कर्म ही काव्य है ऐसा अलङ्कार शास्त्रियों का मत है। और वह काव्य अत्यन्त रमणीय शब्दार्थों का समन्वय तथा रसात्मक वाक्य है ऐसा काव्य शास्त्रियों का सिद्धान्त है। हमारी परम्परा में सही प्रकार के जीवन के ज्ञान के लिये जैसे शास्त्र आदरणीय हैं उसी प्रकार काव्यमार्ग भी आदर्श के रूप में माना जाता है। वेद प्रभु सम्मित कहा जाता है तथा पुराण मित्र सम्मित कहा जाता है। अन्तिम में काव्य को कान्ता सम्मित कहा गया। कान्ता सम्मित शब्द का अर्थ है कान्ता के समान। कान्ता का अर्थ है प्रिय पत्नी। प्रिय रूपवती पत्नी जब भी कुछ जानने की इच्छा से पूछती है तो वह अभिप्राय वाचक शब्दों का प्रयोग नहीं करती फिर मन्द हास्य के साथ तथा अनेक प्रकार की चेष्टाओं के साथ वह अपने प्रिय को अभिप्राय अपने तरीके से बताते हुये उस कार्य के लिये प्रेरित करती है। जैसे–आम खाओगी अथवा अंगूर खाओगी इस प्रकार से प्रिय अपनी प्रिया से पूछता है, तब वह आम खाऊंगी, ऐसा साक्षात् न कहकर, आम मीठा होता है, देखने में भी अच्छा लगता है, ऐसा कहती है। उसके कथन का अभिप्राय इतना ही होता है कि मैं आम खाना पसन्द करूंगी। इसी प्रकार जैसे प्रिया का कथन अभिप्राय परोक्षतः पता लगता है उसी प्रकार काव्य भी परोक्षतः अभिप्राय को बतलाते हैं। अतः काव्य कान्ता सम्मित शब्द से कहे गये। प्रिया का वचन बहुत ही मधुर तथा रसयुक्त होता है। इसी प्रकार काव्य भी रसयुक्त तथा रमणीय शब्दार्थों से युक्त होता है। जिससे सहृदयों को अपनी ओर आकर्षित करता है। इसीलिये काव्य वेदों पुराणों से विलक्षण होता है।

इस तरह काव्यों, कवियों और काव्य शास्त्रों का परिचय शिक्षार्थियों को हो, इस लक्ष्य के साथ 'संस्कृत साहित्य' नाम से इस पाठ्यक्रम को पुस्तक रूप में सम्मिलित करने का प्रयास किया गया है। भाव विनिमय और कौशल पहले तथा

आज भी प्रेरकों पर आश्रित है। अपने अभिप्राय को कैसे साक्षात् या परोक्ष रूप से प्रकट कर सकते हैं, यह काव्य से ज्ञात होता है। इस तरह काव्य के कई प्रयोजन हैं। यही प्रयोजन सर्वश्रेष्ठ कवियों के कार्यों को पढ़ने के लिए हमें प्रेरित करते हैं।

अधिकारी

यह पाठ्य विषय सम्पूर्ण रूप से संस्कृतानुवादित है। परीक्षा का माध्यम हिन्दी भाषा होगी। इसलिए इस पाठ का कौन अधिकारी होगा ऐसा थोड़ा बहुत मन में प्रश्न उठता है।

वे अधिकारी छात्र हैं जो:-

- संस्कृत तथा हिन्दी व्याकरण कोष का अध्ययन किया हो और काव्य का रसास्वादन करना चाहते हों।
- सरल संस्कृत तथा हिन्दी, संस्कृत तथा हिन्दी साहित्य के सरल गद्यांश, पद्यांश को पढ़ और समझ सकें।
- अपने भावों को सरल संस्कृत अथवा हिन्दी भाषा में लिखकर प्रकट कर सकें।

प्रयोजन (सामान्य)

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर संस्कृत साहित्य का पाठ्यक्रम सम्मिलित करके कुछ उद्देश्य नीचे वर्णित हैं।

- जीवन का चरम लक्ष्य सुख ही है। वह कैसे भी प्राप्त हो, वह सुख काव्याध्ययन से प्राप्त होगा, अत: अध्येताओं को प्राप्त करना चाहिए।
- बहुत से काव्य सुख प्रदान करने में सफल-विफल होते हैं। इन काव्यों की विफलता का क्या कारण है। यह जानकर छात्र काव्य का सूक्ष्म चिन्तन कर सके।
- जैसे कवि अपने विचित्र उक्तियों से लोगों को प्रसन्न करता है वैसे ही, छात्र भी काव्याध्ययन में समर्थ हों। अन्य रचित काव्यों का आदर भी करें।
- अपने और अपने परिचितों का जीवन भी काव्य रस से परिपूर्ण कर सकें।
- संस्कृत तथा हिन्दी भाषा शब्दों को समझकर उसके प्रति आदर और श्रद्धा भाव से प्रचार में प्रवर्तित हों।
- छात्र प्राचीन भारतीय ज्ञान सम्पदा, वैज्ञानिकता, सर्वजन उपकारिता और महिमा का गर्व से जगत् में प्रचार-प्रसार करें।
- काव्य ग्रन्थों के सरल अंशों को पढ़कर छात्र उन अंशों के अर्थों को समझ सकेंगे। वे स्वयं लेखन-वाचन के द्वारा अपने भावों को व्यक्त कर सकेंगे।
- काव्य अध्ययन से छात्र महाविद्यालय और विश्वविद्यालय स्तर पर चल रहे पाठ्यक्रमों में अध्ययन हेतु अवसर प्राप्त करने में समर्थ होंगे।
- काव्यों में रूचि लेकर छात्र सशक्त और संलग्न होंगे।

प्रयोजन (विशिष्ट)

संस्कृत साहित्य में प्रवेश का सामर्थ्य

- काव्यों के कौन से विषय समाहित होंगे, इसका सामान्य ज्ञान होगा।
- कवियों का परिचय प्राप्त होगा।
- काव्यों का परिचय प्राप्त होगा।
- काव्य अलंकार, और छन्दों का परिचय प्राप्त होगा।
- रस सिद्धान्त का ज्ञान होगा।
- पठन सामग्री पर आश्रित प्रश्नों का उत्तर दे सकें।

संस्कृत साहित्य के अध्ययन में सामर्थ्य

- काव्यों के अध्ययन का कुछ विशिष्ट क्रम है। उसे जानकार काव्य के अध्ययन को आगे बढ़ाने में समर्थ हो सकेंगे।
- काव्य में विद्यमान छन्दों, अलंकारों तथा व्याकरण के अंशों को जान सकेंगे।
- उनके ज्ञान से अन्यत्र विद्यमान अलंकारादि का ज्ञान होगा।
- कवियों तथा अलंकार शास्त्रों का परिचय प्राप्त होगा।
- छन्द, अलंकार, रस इत्यादि विषयों को समझ कर स्वयं सरल काव्य रचना कर सकेंगे।
- इस पाठ्य विषय के ज्ञान से उसी के समतुल्य भावों वाले अन्य ग्रन्थों के अध्ययन में समर्थ हो सकेंगे।

संस्कृत साहित्य के प्रयोग का सामर्थ्य

- संस्कृत काव्यों के अध्ययन से स्वयं की वाणी में काव्यात्मकता ला पायेंगे।
- दूसरों के द्वारा रचित काव्यों के प्रयोग का ज्ञान हो सकेगा।
- भावों की अभिव्यक्ति प्रभावी ढंग से कर सकेंगे।
- वाणी के द्वारा भावाभिव्यक्ति के समय अलंकारादि शास्त्र सम्मत प्रयोग कर सकेंगे।
- वाणी पर विद्यमान संयोग-वियोग का सामर्थ्य जान पाएंगे।
- जैसे चिकित्सक लोगों को देखकर उसके रोग का चिन्तन करता है, व्यापारी ग्राहक को देखता है। उसी प्रकार जगत को कवि के रूप से देखने में समर्थ हो सकेंगे।

पाठ्य सामग्री

पाठ्य क्रम के साथ निम्नलिखित सामग्री होगीं :

- तीन मुद्रित पुस्तकें।
- एक शिक्षक अंकित मूल्यांकन पत्र प्रदान किया जायेगा।
- काव्य का शिक्षण प्रायोगिक रूप से भी होगा। परन्तु कोई भी प्रायोगिक परीक्षा नहीं होगी।
- पाठ निर्माण में एवं सम्पर्क कक्षाओं में अध्यापन के साथ छात्रों में जीवन कौशलों का अच्छे से विकास हो यह ध्यातव्य विषय है। इससे इन छात्रों में स्वत: ही चिन्तन के साथ उसके उपाय खोजने के साहस का विकास होगा।
- राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान में प्रवेश के बाद इस पाठ्यक्रम को विद्यार्थी एक वर्ष से अधिकाधिक पांच वर्षों में पूरा कर सकता है।

अंक मूल्यांकन विधि एवं परीक्षा योजना

- पत्र के (100) सौ अंक है। परीक्षा समय तीन घण्टा। इस पत्र का लिखित स्वरूप (Theory) ही हैं प्रायोगिक (Practical) कुछ भी नहीं हैं। रचनात्मक (Formative) और योगात्मक (Summative) ये दो ही मूल्यांकन की विधियां होंगी।
- रचनात्मक मूल्यांकन-(20) बीस अंकों का शिक्षक द्वारा दिया गया कार्य (TMA) का एक पत्र होगा। इसका मूल्यांकन अध्ययन केंद्र (Study Centre) पर ही होगा। इस कार्य के अंक, अंक पत्रिका (Marks Sheet) पर अलग लिखे होंगे।
- योगात्मक मूल्यांकन-वर्ष में दो बार (मार्च और अक्टूबर माह में) बाह्य परीक्षा (External Examination) होगी। वही परीक्षा में सम्पूर्ण मूल्यांकन होगा।
- प्रश्न पत्र में ज्ञान (Knowledge), समझ (Understanding), अभिव्यक्ति (Application Skill) इन बिन्दुओं को उपर्युक्त मात्रा में समाहित किया गया है।
- परीक्षा में अतिलघुत्तरीय- एवं निबन्धात्मक प्रश्नों का भी समावेशन होगा।
- सूत्र अर्थ, सूत्र व्याख्या और रूप साधन ये तीनों मुख्य विषय हों। अन्य भी कुछ प्रसक्त-अनुप्रसक्त विषय भी हो सकते है इसे भी समझे।
- उत्तीर्णता हेतु शर्त्ते (Condition) (33) तैंतीस प्रतिशत अंक उत्तीर्णता के मानदण्ड निर्धारित हैं।
- संस्थान की परीक्षा में उत्तर लेखन की भाषा संस्कृत (अनिवार्य) है।

अध्ययन योजना

- निर्देश भाषा (Medium of instruction) संस्कृत
- स्वाध्याय के लिए समय (Self-study hours) 240 घण्टे
- कम से कम तीस (30) सम्पर्क कक्षायें (Personal Contact Programme-PCP) अध्ययन केन्द्रों में होंगी।
- भारांश-सैद्धान्तिक (Theory) सौ प्रतिशत।
- प्रायोगिक (Practical) नहीं हैं।

अंक विभाजन

आगे सारणी देखें

पाठ्य विषय का उद्देश्य (पाठ्य विषय बिन्दु)

उच्चतर माध्यमिक कक्षा हेतु संस्कृत साहित्य की पुस्तक में निम्न विषय समाहित हैं। विवरण नीचे दिया जाता है। समग्र पाठ्य विषय के भाग प्रकल्पित हैं। प्रतिभाग में कितने पाठ हैं, स्वाध्याय के लिए कितने घण्टे, सैद्धान्तिक परीक्षा में कितने अंश, प्रायोगिक परीक्षा में कितने अंश और प्रत्येक अध्याय के अंक विभाजन भी यहाँ दिये गए हैं।

परिच्छेद- 1 कवि परिचय (पाठ 1-3)

अध्याय का औचित्य

जिन कवियों ने संस्कृत को रोचक बनाया, अपनी काव्य कृतियों से संस्कृत को पाला-पोसा, उनकी देश, काल, कृति के विषय में काव्य प्रेमियों की जिज्ञासा स्वाभाविक ही है वही यहाँ पर कुछ वर्णित है।

परिच्छेद-2 काव्याध्ययन-2 (पाठ 4-11)

अध्याय का औचित्य

कवि कुल गुरु कालिदास। उनकी श्रेष्ठ रचना रघुवंश। छात्र कालिदास शैली में ही रघुवंश को जानें। उनके द्वारा ही रस का स्वाद चखें। यहाँ रघुवंश के प्रथम सर्ग से कुछ अंश यहाँ व्याख्यादित हैं।

अनेक प्रकार के काव्य हैं। स्त्रोत लोगों के मनों में रमता है। इसलिए समझने एवं प्रसन्न होने के लिए सुप्रसिद्ध स्त्रोत मोहमुद्गर यहाँ दिया गया है। अम्बिकादत्त व्यास का गद्य काव्य शिवराज विजय अति प्रसिद्ध है। उसके कुछ विशेष अंश यहां उपस्थापित करते हैं।

परिच्छेद-3 काव्याध्ययन-2 (पाठ-12-19)

अध्याय का औचित्य

उत्तर रामचरित नाम का नाटक भवभूति की सर्वोत्कृष्ट कृति रूप का दान विद्वान मानते हैं। यहाँ रामायण का उत्तरार्ध भाग वर्णित है। यह नाटक सात अंकों में है। लंका के महारण में राम ने रावण को पराजित कर सीता को अशोक वाटिका से प्राप्त किया। उसके बाद वनवास समाप्त कर अयोध्या वापस आ गये। उसके बाद राम का राज्याभिषेक सम्पन्न हुआ। वहाँ से आरम्भ होकर सीता से पुनः बिछड़ना लव कुश दो पुत्र रत्नों की प्राप्ति, सीता से पुनः मिलन तक यह नाटक रचित है। उसी का कुछ अंश यहाँ पर स्थापित करते हैं।

बाणभट्ट गद्यकाव्य रचना में निपुण हैं। उनका कोई भी गद्य काव्य छात्रों को अवश्य ही पढ़ना चाहिए इस उद्देश्य से कादम्बरी के कथा भाग का एक अंश शुकनाशोपदेश यहां प्रतिपादित विषय है। प्रभुत्व (राज्यादि) के लाभ में युवक की जो विपत्ति आ सकती है। उस विषय में शुकनास ने दिया उपदेश यहाँ वर्णित हैं। किसी भी शिक्षार्थी को थोड़ा बहुत इस विषय का अध्ययन करना ही चाहिये।

परिच्छेद-4 काव्यदर्पण (पाठ-20-27)

अध्याय का औचित्य

काव्य रचना का विज्ञान है। काव्य के निर्माण में जो नियम स्वीकार्य हैं, काव्य के अध्ययन में भी वे नियम अवश्य ही जानने चाहिए वे सभी नियम, रीतियां, पद्धतियां काव्य शस्त्र में आलोचनीय हैं। उनमें से कुछ प्राथमिक रूप से जानने योग्य विषय इस विभाग में वर्णित हैं। अलंकार शास्त्र भी ऐसा कहते हैं। यहाँ अलंकारों का परिचय भी दिया जा रहा है। अलंकार वृत्ति, छन्द, रस ये कुछ प्रमुख बिन्दुएं यहाँ पर उल्लिखित है।

पाठ्य विषय का उद्देश्य (पाठ्य विषय बिन्दु)

उच्चतर माध्यमिक पाठ्यक्रम की साहित्य के पुस्तक में निम्न विषय समाहित हैं।

क्र.सं.		मुख्य बिन्दुएं	घण्टा	(अंङ्क)
1	प्रथम	कविपरिचय	24	8
	परिच्छेद			
	पाठ-1	कवियों का स्थान, समय, रचनाओं का परिचय वाल्मीकि, व्यास, भास		
	पाठ-2	कवियों का स्थान, समय, रचनाओं का परिचय कालिदास, भारवि अश्वघोष		
	पाठ-3	कवियों का स्थान, समय, रचनाओं का परिचय श्रीहर्ष, क्षेमेन्द्र, भवभूति, कल्हण		
2	द्वितीय	काव्याध्ययन-1	60	30
	परिच्छेद			
	पाठ-4	रघुवंश (प्रथमसर्ग)-रघुवंशीय राजाओं का गुणवर्णन (1-10 श्लोक)		
	पाठ-5	रघुवंश (प्रथमसर्ग)-राजा दिलीप का गुणवर्णन-1 (11-23 श्लोक)		
	पाठ-6	रघुवंश (प्रथमसर्ग)-राजा दिलीप का गुणवर्णन-2 (24-34 श्लोक)		
	पाठ-7	रघुवंश (प्रथमसर्ग)-वसिष्ठाश्रम प्रति गमन (35-48 श्लोक) स्तोत्र आदि साहित्य		
	पाठ-8	स्तोत्रसाहित्य मोहमुद्गर-अन्वय व्याख्या, सरलार्थ, व्याकरण		
	पाठ-9	ऐतिहासिक आधुनिक काव्य शिवराजविजय बटुसंवाद		
	पाठ-10	ऐतिहासिक आधुनिक काव्य शिवराजविजय योगीराजसंवाद		
	पाठ-11	ऐतिहासिक आधुनिक काव्य शिवराजविजय यवनदुराचार		
3	तृतीय	काव्य अध्ययन	70	30
	परिच्छेद			
	पाठ-12	उत्तररामचरित (प्रथम) अंक- श्लोक का अन्वय, अन्वयार्थ, गद्यवाक्यों का सरलार्थ, प्रयोजन में व्याकरणटिप्पणी और विशेष टिप्पणी		
	पाठ-13	उत्तररामचरित प्रथम अंक अष्टावक्रसंवाद		
	पाठ-14	उत्तररामचरित प्रथम अंक चित्रदर्शन-1		
	पाठ-15	उत्तररामचरित प्रथम अंक चित्रदर्शन-2		
	पाठ-16	कादम्बरी-शुकनासोपदेश यौवनस्वभाव गद्यवाक्यों का अन्वयार्थ, सरलार्थ, व्याकरणटिप्पणी और विशेषटिप्पणी		

	पाठ–17	कादम्बरी–शुकनासोपदेश–लक्ष्मी की चंचलता		
	पाठ–18	कादम्बरी–शुकनासोपदेश–लक्ष्मी का दुष्प्रभाव–1		
	पाठ–19	कादम्बरी–शुकनासोपदेश–लक्ष्मी का दुष्प्रभाव–2		
4	चतुर्थ	काव्यदर्पण	86	34
	परिच्छेद			
	पाठ–20	अलंकारिक परम्परा परिचय भारत, भामह, दण्डी, वामन, रुद्रट, अभिनवगुप्त, कुन्तक, उनकी देश, काल, कृतियाँ		
	पाठ–21	अलंकारिक परम्परा परिचय– आनन्दवर्धन, अप्पय दीक्षित मम्मट, भोजराज विश्वनाथ, जगन्नाथ–उनकी देश, काल, कृतियाँ		
	पाठ–22	वाच्य–लक्ष्य–व्यङ्ग्यों का सामान्य परिचय		
	पाठ–23	छन्द–छन्दों के मात्रा, गण, यती का परिचय छन्दों के भेद।		
	पाठ–24	छन्द–मात्रिकच्छन्द, और वार्णिक छन्द पर चिन्तन–अनुष्टुप, इद्रवज्रा, वसन्ततिलका, मालिनी, शार्दूलविक्रीडित इत्यादि कुछ छन्दों का लक्षण, लक्षण की व्याख्या, उदाहरण श्लोक में समन्वय		
	पाठ–25	आलंकारपरियच–अर्थालंकार, शब्दालंकार–सामान्यपरिचय, अलंकार का प्रयोजन लक्षण, लक्षण का बोध, दृष्टान्त के अनुसार अन्वय कुछ मुख्य अलंकार।		
	पाठ–26	आलंकारपरिचय उपमा, रूपक, दृष्टान्त, उत्प्रेक्षा इत्यादि कुछ मुख्य अलंकार।		
	पाठ–27	रस परिचय–विभावादीयों का परिचय, स्वरूप अनुसार रसास्वाद के प्रकार रसभेद		

प्रश्न पत्र का प्रारूप
(Question Paper Design)

विषय संस्कृत साहित्यम (348) (Sanskrit Sahitya) **स्तर: उच्चतर माध्यमिक कक्षा**

परीक्षा अवधि : (Time) तीन घण्टें (3 hrs) **पूर्णांक : (Full Marks)-100**

लक्ष्यानुसार अङ्क विभाजन

विषय	अङ्क	प्रतिशत योग
ज्ञान (Knowledge)	25	25%
अवबोध (Understanding)	45	45%
अनुप्रयोगकौशल (Application Skill)	30	30%
महायोग >	100	

प्रश्न प्रकार से अङ्क भार विभाजन

प्रश्न प्रकार	प्रश्न संख्या	अङ्क	योग
दीर्घोत्तरीयप्रश्न (LA)	5	6	30
लघूत्तरात्मकप्रश्न (SA)	10	4	40
लघूत्तरीयप्रश्न (VSA)	10	2	20
बहुविकल्पीयप्रश्न	0	1	10
महायोग >	35		100

पाठ्य विषय विभागानुसार भारांश

विषय घटक	अङ्क	स्वाध्याय के हेतु काल
1. कविपरिचय	8	24
2. काव्याध्ययन-1	28	60
3. काव्याध्ययन-2	30	70
4. काव्यदर्पण	34	86
महायोग >	100	100

प्रश्न पत्र के कठिनता का स्तर

प्रश्न स्तर	अङ्क
कठिन (Difficult) (मेधावी एवं उत्तर देने में समर्थ)	25
मध्यम (Medium) (नित्य पठन अध्यवसायी छात्र उत्तर देने में समर्थ)	50
सरल (Easy) (समग्र पाठसामग्री को थोड़ा पढ़कर छात्र उत्तर देने में समर्थ)	25

आदर्श प्रश्न पत्र

इस प्रश्न पत्र में .... प्रश्न हैं .... और मुद्रित है।

अनुक्रमाङ्क 4 5 0 1 5 9 1 8 3 0 0 1	(Code No.)
(Roll No.)	कूट संख्या 55 /SS/A/A

संस्कृत साहित्य

Sanskrit Sahitya

(348)

परीक्षा दिन और दिनांक .....
Day and Date of Emamination _____

निरीक्षक का हस्ताक्षर
Signature of two Invigilators (1) _____
(2) _____

सामान्य निर्देश

1) अनुक्रमांक प्रश्न पत्र के पहले कोष्ठक में ही लिखें।

2) जाँच ले कि प्रश्न पत्र की पुट संख्या और प्रश्नों की संख्या पहले पुट वाले संख्या के समान है या नहीं। प्रश्नों का क्रम सही है या नहीं। देखे कि प्रश्नपत्र की पुट संख्या और प्रश्नों की संख्या सही है या नहीं।

3) वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के (क), (ख), (ग), (घ) इन विकल्पों में सही उत्तर चुनकर उत्तर पत्र में लिखें।

4) सभी प्रश्नों के उत्तर निर्धारित समय में ही लिखने होंगे।

5) उत्तर पत्र में स्वपरिचयात्मक लेख अथवा निर्दिष्ट स्थान को छोड़कर अन्यत्र कहीं भी अनुक्रमांक लेखन मना है।

6) अपने उत्तर पत्र में प्रश्न पत्र कूट संख्या ही लिखें।

संस्कृत साहित्य

Sanskrit Sahitya

(348)

परीक्षा समय अवधि : तीन घण्टे (3 Hrs) पूर्णांक (Full Marks) 100

निर्देश :-

1) इस प्रश्न पत्र के (A) भाग में 10, (B) भाग में 10, (C) भाग में 10, (D) भाग में 5 प्रश्न सहित कुल (35) प्रश्न है।

2) प्रश्न के बाई ओर संख्याओं के (अंक x प्रश्न = पूर्णांक) योग का निर्देश है।

3) सभी प्रश्न अनिवार्य हैं।

(A) प्रश्नों के उचित विकल्प चुनें। 1 x 10 = 10

1) रामायण में कितने काण्ड हैं?

(क) सात (ख) आठ (ग) नौ (घ) दस

2) द्वादश पञ्जरिका स्तोत्र के अनुसार मृत्यु के निकट होने पर कौन रक्षा करता है?

(क) गोविन्द (ख) शिव (ग) ब्रह्मा (घ) कार्तिक

3) 'अरूण एस प्रकाश:' यह गद्यांश किस काव्य में है?

(क) शिवराज विजय (ख) किरातार्जुनीय (ग) मेघदूत (घ) अभिज्ञान शाकुंतलम्

4) दक्षिण का राजा ऐसी संज्ञा किस की है?

(क) शिवराज (ख) गौरसिंह (ग) अफजल खान (घ) श्यामवटु

5) लक्ष्मी किसे बुरे स्वप्न की भाँति भी स्मरण नहीं करती?

(क) दाता को (ख) सुजनों को (ग) शूर को (घ) सरस्वती के प्रेमी

6) लौकिक छन्द कितने प्रकार के हैं।

(क) दो (ख) तीन (ग) चार (घ) पांच

7) 'स च नित्यं प्रशान्तमा' यह श्लोकांश किस स्त्रोत में है?

(क) द्वादश व अरिका (ख) श्रीराम गुणवर्णना (ग) शिव ताण्डव स्त्रोत (घ) अच्युताषृकम्

8) वृत्त कितने प्रकार के हैं?

(क) दो (ख) तीन (ग) चार (घ) पाँच

9) भास की रचना का चयन करें।

(क) रामायण (ख) महाभारत (ग) स्वप्न वासवदत्त (घ) उत्तररामचरित

10) राम और लक्ष्मण का बन्धन कहाँ हुआ?

(क) अयोध्या (ख) किष्किन्धा (ग)जनस्थान नाम के वन में (घ)शृंङ्गवेरपुर

(B) सभी प्रश्नों के निर्देशानुसार उत्तर लिखें: 2x10 = 20

1) अलंकार शब्द की करण पक्ष में क्या व्युत्पत्ति है। अलंकार शब्द की भाव पक्ष में क्या व्युत्पत्ति है?

2) कादम्बरी के रचनाकार कौन है? कादम्बरी कथा है अथवा आख्यायिका?

3) आचार्य भामह द्वारा लिखित ग्रन्थ कौन सा है एवं वे किस सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं?

4) आचार्य वामन कहाँ के थे एवं उनका समय क्या था?

5) अलंकार कितने प्रकार के है और वे कौन से हैं?

6) आचार्य भरत द्वारा लिखित ग्रंथ का नाम क्या है एवं वे किस सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य हैं?

7) अलंकार सम्प्रदाय के प्रवर्तक कौन है? उनके मत में काव्य की आत्मा क्या है?

8) मृत्यु के निकट होने पर क्या नहीं रक्षा कर सकता? किससे चित्र लगाना चाहिए?

9) सूर्य कहाँ से उत्पन्न होकर किसे नमन करने गया?

10) अलंकार काव्य का स्थिर धर्म है या नहीं? अलंकार के द्वारा काव्य में क्या वृद्धि होती?

(C) अधोलिखित प्रश्नों का अनतिदीर्घ उत्तरों में समाधान करें : 4 x 10 = 40

1) क्या बड़ा अवधान है। जीवन कैसा है इसे वर्णित कीजिए।

2) श्रीराम के गुणों का अपनी भाषा में वर्णन कर उनके राज्य कौशल का भी वर्णन कीजिए।

3) मोहम्मद की अधमता का वर्णन कर दक्षिण देश का वर्णन कीजिए।

4) राम ने कैसे लोक निन्दा की अथवा प्रसवण गिरी का ग्रन्थ के अनुसार वर्णन कीजिए।

5) अतिश्य धन कहाँ नहीं शोभित होता है। या मुनि लोग विन्ध्य जंगलों में अपना जीवन कैसे यापन करते थे?

6) अलसलुत..... इस लिखे हुये प्रतीक के श्लोक को पूरा लिख कर व्याख्या कीजिए। अथवा सीता की पवित्रता के विषय में श्रीराम ने क्या कहा?

7) श्री (लक्ष्मी) के दुस्चारित का वर्णन करें। अथवा कैसे यह गुरुपदेश है?

8) समवृत्त अथवा विषमवृत्त में से एक का चयन कर छोटा प्रबन्ध लिखिए।

9) मात्रिक अथवा वर्णिक छन्द में से एक का चयन कर एक लघु प्रबन्ध लिखिए।

10) वंशस्य या तोहक छन्द में से किसी एक छन्द का लक्षण बताकर उदाहरण में लक्षण घटाइए।

(D) प्रदत्त प्रश्नों का दीर्घ उत्तर से समाधान करें। 6 x 5 = 30

1) शिववीर और गौर सिंह की बातों का वर्णन कीजिए। उन दोनों ने धर्म के लिए क्या-क्या कष्ट सहे थे। या श्रीराम के गुणों का वर्णन कर उनके राज्य संचालन कौशलों का वर्णन कीजिए।

2) 'आज्ञा गुरुणां ह्यविचारणीया' इस सूक्ति का समर्थन कर (वर्णन करे) अथवा भवभूति का परिचय स्थापित करें।

3) सीता द्वारा राम के लिये वर्णन यथावत लिखे। अथवा उत्तररामचरित का मंगलाचरण (श्लोक) की व्याख्या करें।

4) उपमा या अतिशयोक्ति अलंकार का वर्णन करें।

5) रूपक अथवा समासोक्ति अलंकार का वर्णन करें।

आदर्श प्रश्न पत्र की अंङ्क योजना

(A) बहुविकल्पीय प्रश्नों के उत्तर :- 1 x 10 = 10

1. क 2. क 3. क 4. क 5. क 6. क 7. ख 8. ख 9. ग 10. घ

(B) सभी प्रश्नों के निर्देशानुसार उत्तर : 2 x 10 = 20

1) 'अलंकृयते अनने इति अलङ्कार:' यह व्युत्पत्तिकरण पक्ष की है। 'अलंकृति:- अलंकार:' यह व्यत्पत्ति भाव पक्ष की है।

2) कादम्बरी बाण भट्ट की रचना है। कादम्बरी कथा है।

3) काव्यालंकार, अलंकार सम्प्रदाय से।

4) कश्मीरी थे। आठवीं शताब्दी का समय काल।

5) तीन प्रकार के 1 शब्दालंकार, अर्थालंकार, शब्दार्थालङ्कार

6) नाट्यशास्त्र, रस सम्प्रदाय के।

7) भामह। अलङ्कार

8) सन्निहिते मरणे डुकृञ करणे इत्यादि व्याकरण शास्त्र आदि रक्षा नहीं करेंगे। अपने कर्म से उपार्जित धन से ही प्रेम रखना चाहिये।

9) सूर्य पूर्व दिशा से उदित होकर विष्णु को नमन करने हेतु अस्त हुआ।

10) स्थिर धर्म नहीं होता है। शोभा को बढ़ाता है।

(C) अधोलिखित प्रश्नों का अनति दीर्घ उत्तरों से समाधान :- 4 x 10 = 40

1) पाठ-8 देखिए।

2) पाठ-8 देखिए।

3) पाठ-9 देखिए।

4) पाठ-11/12 देखिए।

5) पाठ-13/12 देखिए।

6) पाठ-12/10 देखिए।

7) पाठ-14/13 देखिए।

8) पाठ-22.4.9/22.4.3 देखिए।

9) पाठ-23.1/22 देखिए।

10) बिन्दु-23.2.5/23.2.6 देखिए।

(D) प्रदत्त प्रश्नों का दीर्घ उत्तर से समाधान :- 6 x 5 = 30

1) पाठ-9/8 देखिए।

2) पाठ-13/10 देखिए।

3) पाठ-11/10 देखिए।

4) बिन्दु-25.2/25.9 देखिए।

5) बिन्दु-25.4/25.8 देखिए।